निकष

डा० धर्मपाल आर्य

वैदिक प्रकाशन, नई दिल्ली

निकष

डॉ० धर्मपाल

वैदिक प्रकाशन
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

प्रकाशक :
वैदिक प्रकाशन
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

सम्पादक :
डॉ० धर्मपाल

मूल्य : 10.00

प्रथम संस्करण

मुद्रक :
चौधरी प्रिण्टर्स,
मौजपुर, दिल्ली-110053

समर्पण

युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित
सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में संलग्न निष्ठावान
वैदिक विद्वानों को सादर समर्पित ।

आमुख

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना करते समय जो नियम बनाए थे, उनका सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक महत्त्व है। सामान्यतः संस्थाओं की स्थापना एक निश्चित उद्देश्य से की जाती है और उद्देश्य की प्राप्ति के बाद, और कभी-कभी बिना उद्देश्य की प्राप्ति के ही, वे संस्थाएं काल के गर्त में विलीन हो जाती हैं। ऐसा उन संस्थाओं के साथ होता है, जो स्वार्थवश तैयार की गयी हों, अथवा जिनसे कुछ ही लोगों का भला होता है, अथवा जिनके साथ थोड़े लोग जुड़े हों, अर्थात् जिनका प्रभाव क्षेत्र सीमित हो।

आर्यसमाज की स्थापना विश्व के कल्याण के लिए की गई थी। ऋषिवर ने आर्य जनता का आह्वान करते हुए कहा था कि यदि अपना और समाज का कल्याण चाहते हो तो आर्यसमाज के साथ आ जाओ अन्यथा कुछ भी हाथ न लगेगा। यह बात तर्क की कसौटी पर यथार्थ है। आर्यसमाज के लोगों में क्षुद्रता, स्वार्थपरता तथा सीमित दृष्टिकोण के लिए कोई स्थान नहीं है। आर्यसमाज के नियम मन्तव्य एवं कार्यक्रम मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए हैं। यह मानवधर्म है। यहां पर व्यष्टि एवं समष्टि दोनों अवधारणाओं के सन्तुलित विवेचन, अनुशीलन एवं प्राप्ति पर बल दिया गया है।

आर्यसमाज वेदों के प्रचार-प्रसार एवं वेदों के अनुसार जीवन यापन पर बल देता है। वेद आदि सृष्टि में दिया गया ईश्वरीय ज्ञान है। वेद किसी देश, काल अथवा जाति विशेष के लिए नहीं हैं। वेद सभी के लिए तथा सभी कालों के लिए है। आर्य-समाज को चिन्तन प्रक्रिया का मूलाधार वेद है, अतः आर्यसमाज की स्थिति भी इसी प्रकार सार्वकालिक तथा सार्वदेशीय है। कोई भी व्यक्ति आज तक वेदों के मानववाद पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सका है। यही बात आर्यसमाज के लिए भी उतनी ही सत्य है। संगच्छध्वं संवदध्वं की वेदविहित धारणा, विश्वनागरिकता, विश्वशान्ति एवं गुट निरपेक्षता का सन्देश देती हैं। यह अवधारणा विश्व समाज एवं विश्व परिवार की भावना को सुदृढ़ करती है तथा आधुनिक दीवारों के बन्धन से मुक्त करके, मनुष्य के चिन्तन फलक को विस्तृत आयाम देती है। आर्यसमाज संकुचितता से हटाकर व्यापकता की ओर चलने के लिए मानव मात्र को प्रेरित करता है।

आर्यसमाज स्त्रियों को समानाधिकार दिए जाने तथा उन्हें सभी कार्यों में सहभागी बनाने का पक्षधर है। पाश्चात्य स्त्री स्वातंत्र्य तथा भारतीय स्त्री स्वातंत्र्य दोनों भिन्न दर्शन पर आधारित हैं। यहां पर स्त्रियों को उचित सम्मान एवं स्थान

देने की बात पर बल दिया गया है तथा उच्छृंखलता के मार्ग से रोका गया है। आर्यसमाज ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। बालकों की समस्याओं के प्रति भी आर्यसमाज सचेत है। दलितोद्धार के क्षेत्र में आर्यसमाज के कार्य को सदा याद किया जाएगा। आर्यसमाज की वर्णाश्रम व्यवस्था सुविचारित विज्ञान सम्मत अवधारणा पर आधृत है। यहाँ पर वर्ण को वरण करने की बात कही गई है। यहाँ पर शूद्र भी ब्राह्मणत्त्व को प्राप्त कर सकता है। यह बात केवल सिद्धान्त एवं दर्शन तक सीमित नहीं है, इसके व्यावहारिक पक्ष भी हमारे सामने हैं।

आज देश अनेक समस्याओं से घिरा है। ये समस्याएं हैं—क्षेत्र, भाषा एवं धर्म की संकीर्णता, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार, व्यभिचार, दुराचार, जनसंख्या का विस्फोट, बेकारी तथा युवा पीढ़ी की दिशाहीनता, स्वार्थी राजनेताओं के हाथ में सत्ता का अधिकार, प्रजातंत्र का दुरुपयोग, गरीबी एवं अशिक्षा का विस्तार, सामाजिक कार्यों के प्रति उदासीनता और स्वार्थ संकुलता। आर्यसमाज ने इन सभी दिशाओं में कार्य किया है। आर्यसमाज ने सभी प्रमुख समस्याओं के समाधान में सदैव दिशा-निर्देश किया। राष्ट्र-द्रोह एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों तथा बलात् धर्मान्तरण का आर्यसमाज ने सशक्त विरोध किया।

इस पुस्तिका में, आर्यसमाज के इन्हीं मन्तव्यों के प्रचार-प्रसार हेतु समय-समय पर आर्यसन्देश में प्रकाशित अग्रलेखों को संकलित किया गया है। आर्यसमाज के कार्यक्रमों की व्यापकता तो इन अग्रलेखों में नहीं सिमट पायी है, परन्तु वर्ष 1990-91 में विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु तथा राष्ट्रीय विसंगतियों के विरुद्ध उठ खड़े होने का आह्वान इन अग्रलेखों में अवश्य किया गया है। ये लेख व्यक्ति, राष्ट्र, समाज एवं मनुष्यता के उत्थान एवं कल्याण के प्रति समर्पण को रेखांकित करते हैं। इनमें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। महापुरुषों के जीवन के प्रेरक प्रसंग भी यहाँ पर दिए गए हैं। भारतीयता, भारतीय अस्मिता तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए आर्यजनों को सदैव तत्पर रहने की प्रेरणा दी गई है। आर्यसमाज के आन्दोलनकारी स्वरूप तथा स्वाधीनता संग्राम में योगदान का भी कुछ लेखों में संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

इन लेखों का मूल उद्देश्य जन-जागरण है। विचारणा तथा क्रियान्वयन में श्री सूर्यदेव जी तथा श्री मूलचन्द जी गुप्त का समय-समय पर सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं उनका धन्यवाद करता हूँ। संस्थाओं के कार्यों में एक, दो नहीं अनेक लोगों का सहयोग मिलता है तथा सहयोग लिया जाता है, मैं उन सभी सहयोगियों का साधुवाद करता हूँ।

—डॉ० धर्मपाल

अनुक्रम

खण्ड-1

खण्ड—2

राजसत्ता में धर्म चेतना के अभाव से ही देश की दुर्दशा

दिल्ली में ही नहीं, पूरे भारतवर्ष में और यह कहा जाए कि सम्पूर्ण विश्व में आजकल 'रामायण' का मंचन हो रहा है। रामायण की भावना को, रामत्व को क्या हम अपने जीवन में उतार सके हैं ? यह प्रश्न हमीं से उत्तर की अपेक्षा करता है। पिछले दिनों नई दिल्ली में एक सन्त सम्मेलन हुआ। इसमें कहा गया कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब साधु लोग ही इसके निवारण के लिए आगे आते हैं। इसीलिए अब भी समाज से उदासीन रहने वाले व्यक्तियों को अर्थात् साधुओं को अपने एकान्त से निकलकर समाज का पथ प्रदर्शन करना चाहिए। ये विचार गाँधी जयन्ती के दिन कहे गए। लगता है कि यह हिन्दुओं के सामने आई चुनौतियों का सामना करने के लिए एक उपयुक्त अवसर है।

नई दिल्ली में हुए इस सम्मेलन में कहा गया कि देश की दुर्दशा का मुख्य कारण यह है कि जो लोग राजसत्ता में बैठे हैं, वे धार्मिक नहीं हैं। वे धर्म का आचरण नहीं करते। 'न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः; न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।'

प्रवन्ध कर्त्री सभा को धर्माचरण करने वाली होना ही चाहिए। यही बात हमारी सरकार के लिए भी है। राजसत्ता में बेठे लोगों में ज्ञान और धर्मचेतना की कमी है। वे व्यक्तिगत सत्ता भोग को अधिक महत्व देते हैं और सामाजिक हित की परवाह नहीं करते। हम ऊपर से नीचे तक विदेशी भाषा, विदेशी संस्कृति, विदेशी विचार, विदेशी रहन-सहन में डूबे हुए हैं। हम अभी तक आजाद नहीं हैं। हमें इस अवसर पर आत्म विश्लेषण करना चाहिए और रामत्व को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। राम को हम मर्यादा स्वरूप मानते हैं। राम के इस स्वरूप का आधार अनुग्रह है। अनुग्रह शब्द सहज स्वाभाविक रूप से शुद्ध चेतना में ही रहता है यही कारण है कि राम इस संसार से विरक्त होने की बात नहीं करते। वे जरठ जटायु से भी कहते हैं कि तुम जीना चाहते हो तो जीओ। वे बाली का बाण मारने के बाद भी कहते हैं कि तुम जीना चाहते हो तो मैं तुम्हें जीवन दे सकता हूं। वे जयन्त जैसे दुष्ट को भी केवल एक आंख नष्ट करके उसे जीवन दान करते हैं। उन्होंने सरभग ऋषि से भी यही कहा था कि मरने के लिए नहीं, जीने के लिए जीओ। यही राम का अनुग्रह है। यही रामत्व है। हम इसे प्राप्त करें। हम जीवन जिएं। जीवन इस बात का नाम नहीं है कि हम सांस लेते रहें।

जीवन इस बात का नाम है कि हम इस जीवन में कुछ काम करें। राम ने सुग्रीव को भी समझाया था कि वे वैराग्य की बातें छोड़कर अपने जीवन को जीवन्त बनाएं। राम स्वयं धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। धार्मिक का अर्थ है, जीवन को करने के लिए धारण करना। राम जीवन को धारण करने के धर्म का पालन करते हैं।

—डॉ धर्मपाल
(आर्यसंदेश, 16-10-88)

जो तुम कहना चाहते हो उसे पहले करके दिखाओ। तभी कहने के अधिकारी हो सकते हो, तभी संसार उसको सुनेगा व मानेगा भी। —स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ईश्वर के बिना दिव्य गुण वाले पदार्थों और विद्वानों को भी देव न मानना ठीक नहीं। क्योंकि परमेश्वर महादेव और जो देव न होता तो सब देवों का स्वामी होने से महादेव क्यों कहाता।

जो सब जगत की उत्पत्ति करता है इसलिए परमेश्वर का नाम 'सविता' है।

जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम 'कुवेर' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

प्रश्न रामकथा का नहीं, रामकथा के प्रयोग का है।

भारतवर्ष के कोने कोने में विजयदशमी का पर्व हर्ष और उल्लास से मनाया जाता है। नवरात्रों में स्थान-स्थान पर रामलीला का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर रावण और कुम्भकर्ण आदि के पुतले भी जलाए जाते हैं। क्या हमने यह जानने का प्रयत्न किया है कि राम और रावण कौन थे ? इतने वर्षों के बाद भी वे क्यों अमर हैं ? निश्चय ही यह एक विचारणीय प्रश्न है। राम एक आदर्श पुरुष थे, वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे आदर्श भाई थे, आदर्श पुत्र थे, आदर्श पति थे, आदर्श शासक थे। और भी अनेक विशेषणों से आप उन्हें विभूषित कर सकते हैं। संसार में जिस गुण से हम और आप परिचित हैं, वह उनमें था। राम हृदय से किसी से भी द्वेष न करते थे। वे बाहर भीतर एक थे। उनमें कोई छल प्रपंच न था। वे रावण का दाह संस्कार करने के लिए विभीषण को आदेश देते हैं—'मरणान्तानि वैराणि निवृत्तिम् किम् प्रयोजनम्। क्रियतामस्य संस्कारः।' हमें भी चाहिए कि राम के जीवन से कुछ सीखने का यत्न करें और उनके गुणों को अपने जीवन में धारण करें। तभी हमारा विजयादशमी का पर्व मनाना सार्थक होगा।

रामकथा से सम्बन्धित अनेक काव्य लिखे गए हैं, कहानियाँ लिखी गयी हैं नाटक लिखे गए हैं और उपन्यास लिखे गए हैं : प्रत्येक साहित्यकार रामकथा को अपने ढंग से प्रस्तुत करता है और इसका उसे अधिकार भी है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति लोकमत के विपरीत कोई बात करे तो यह उचित नहीं है। राम को श्रेष्ठ माना गया है और रावण को दुष्ट। यदि इसके विपरीत किसी ग्रंथ का प्रतिपाद्य होगा तो निश्चय ही उसे जनता का कोप भाजन बनना पड़ेगा। पिछले दिनों एक फिल्म आई थी कलयुग और रामायण। सभी धर्मपरायण लोगों ने उसकी भर्त्सना की क्योंकि उससे हमारी आस्थाओं को चोट पहुंचती थी। पिछले दिनों दूरदर्शन पर रामायण धारावाहिक दिखलाया गया। उसमें भी कई स्थानों पर फिल्मों जैसे फार्मूले भरे गए थे। निश्चय ही ऐसे प्रस्तुतीकरण से हमारी भावनाओं को चोट पहुंचती है। प्रस्तुतीकरण वह अच्छा होता है जो हमारे चित्त व चरित को उदात्तता प्रदान करे। रामलीलाओं में किए गए भौंड़े प्रदर्शन धन बटोरने में भले ही सहायक हों परन्तु उनसे किसी का भला नहीं होने वाला है। रामायण सीरियल में पुष्प वाटिका प्रसंग को लम्बा खींचा गया है, जबकि

इसे न इतना विस्तार बाल्मीकि ने दिया, न, तुलसीदास ने, न राधेश्याम ने और न ही मैथिलीशरण गुप्त ने।

रामकथा जन कथा है। मैंने पहले भी कहा है कि इसका कभी भी एक रूप नहीं रहा, यह विकसित हुई है और विकृत भी हुई है। इसका उपयोग सदा से धर्म और आदर्शों की रक्षा के लिए किया जाता रहा है और जो इससे व्यापार जोड़ता है, उसे कभी भी अच्छा नहीं माना गया। रामकथा का प्रयोग हमें करना चाहिए। इसे दूरदर्शन पर या अन्य संचार माध्यमों पर भी दिखाया जा सकता है, पर इस कथा के शाश्वत मानव मूल्यों का प्रदर्शन होना चाहिए, भोंडा प्रदर्शन नहीं। हमें प्राचीन धार्मिक आदर्शों को दिखलाना चाहिए वाल्मीकि के राम महापुरुष हैं। उनमें वे गुण हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए हमें प्रयास करना चाहिए। तुलसी के राम भक्ति मार्ग के सूत्रधार हैं। मैथिलीशरण गुप्त के राम में युगीन चेतना है—स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा आकांक्षा। कैकेयी के स्वरूप को भी उन्होंने नया आयाम दिया। राम की कथा में जीवन के विविध पक्षों को दिया गया है। उसमें आवश्यक और अनुकरणीय उपदेश हैं, दार्शनिक व्याख्याएं हैं, सांसारिक शिक्षाएं हैं।

आज भी रामकथा का उपयोग किया जा सकता है, पर वह होना चाहिए भ्रातृत्व के लिए, राष्ट्रीयता के लिए, धार्मिकता के लिए और आदर्श जीवन यापन के लिए। जब हम राम के गुणों को धारण कर सकेंगे तभी हम रामकथा से लाभान्वित हो सकते हैं। अन्यथा नहीं।

—डॉ धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 25-10-88)

जो सब विस्तृत जगत का विस्तार करने वाला है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'पृथिवी' है।

जो सबको भीतर रखने सबको ग्रहण करने योग्य चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है इससे ईश्वर के अन्न 'अन्नाद' और 'अत्ता' नाम हैं।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

नई शिक्षा नीति में संस्कृत को देश निकाला

लगभग एक सौ पचास साल पहले लार्ड मैकाले ने उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में संस्कृत और अरबी के स्थान पर अंग्रेजी को अनिवार्य करने की बात कही थी। उस समय स्थानीय न्यायालयों में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग होता था। पर 1835 के बाद सरकारी नौकरी पाने के लिए मैकाले की इच्छा के अनुसार अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य हो गया। मैकाले को भाषा से कोई लेना-देना नहीं था। उसका शुद्ध उद्देश्य था कि भारत से भारतीयता समाप्त हो जाए। वह अपने उद्देश्यों में सफल भी हुआ। 1835 में शिक्षा पद्धति में जो कमी रह गयी थी उसे हमारी सरकार ने 1985 की नई शिक्षा नीति में पूरा कर दिया। इसके अनुसार संस्कृत भाषा को त्रिभाषा सूत्र में से पूर्णत: निकाल दिया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन. सी. ई. आर. टी.) ने त्रिभाषा का प्रारूप इस प्रकार दिया है—प्रथम भाषा मातृ भाषा क्षेत्रीय भाषा होगी। द्वितीय भाषा अहिन्दी भाषा क्षेत्रों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी होगी। हिन्दी भाषी प्रान्तों में द्वितीय भाषा आधुनिक भारतीय भाषाओं में से कोई एक अथवा अंग्रेजी होगी। तृतीय भाषा अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी अथवा अंग्रेजी होगी, जिसको द्वितीय भाषा के रूप में नहीं पढ़ा गया है। हिन्दी भाषी प्रान्तों में तृतीय भाषा अंग्रेजी अथवा आधुनिक भाषाओं में से कोई एक होगी जिसे द्वितीय भाषा के रूप में नहीं पढ़ा गया है। इस पूरे आख्यान में संस्कृत का कहीं नाम भी नहीं है। हमारे नेता संस्कृत के खूब गीत गाते हैं। श्री बलराम जाखड़ कहते हैं कि संस्कृत ने भारत को एक सूत्र में जोड़ा है। राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए संस्कृत आज भी उतनी ही जरूरी है जितनी कि प्राचीन काल में थी। ये शब्द डा० जाखड़ ने पं० इन्दुचन्द्र शास्त्री की पचहत्तरवीं जयन्ती के अवसर पर एक संगोष्ठी में कहे थे। श्री कुलानन्द भारतीय ने भी यही कहा था। डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, डा० दौलत सिंह कोठारी, प्रो० ब्रजमोहन चतुर्वेदी, कुमारी टी० जैकब ने भी संस्कृत एवं राष्ट्रीय एकता के महत्त्व पर प्रकाश डाला था। एक अन्य समारोह में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश श्री रंगनाथन मिश्र ने भी संस्कृत को दैनिक जीवन में अपनाने का सुझाव दिया था। प्रसिद्ध विद्वान् डा० लोकेशचन्द्र ने कहा था कि—'आठ हजार साल से भारत में भावनात्मक एकता का कार्य संस्कृत के जरिए होता रहा है।' हैदराबाद का हिन्दू सेवा प्रतिष्ठान संस्कृत को जन-जन तक पहुंचाता है। आर्यसमाज भी संस्कृत को जनवाणी के रूप में देखना चाहता है। श्री नरसिंह राव भी कहते हैं कि संस्कृत भाषा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की धरोहर है।

इतना सब होने पर भी संस्कृत की अवमानना की जा रही है। सेण्ट्रल बोर्ड आफ सैकण्डरी एजूकेशन ने संस्कृत को हिन्दी के प्रश्नपत्र में सम्मिलित करके इसके स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त कर दिया है। बोर्ड के प्रवक्ता ने कहा है कि त्रिभाषा फार्मूले में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शामिल किया गया है और संस्कृत आधुनिक भाषा नहीं है। संस्कृत को त्रिभाषा फार्मूले से अलग कर देने पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती ने घोषणा की है कि संस्कृत को उचित स्थान दिलाने के लिए आर्यसमाज आन्दोलन छेड़ेगा। देववाणी संस्कृत ही ऐसी भाषा है जो पूरे भारत में प्रचलित है और बहुसंख्यक लोगों के उपयोग में आती है। यह देश को सांस्कृतिक और धार्मिक एकता के सूत्र में बांधे हुए भी है। इस भाषा की उपेक्षा राष्ट्रीय संस्कृति की उपेक्षा है। सम्पूर्ण आर्य जगत् जब इस आंदोलन से जुड़ेगा तो निश्चय ही सरकार को इस विषय पर पुनर्विचार करना पड़ेगा।

—डॉ धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 30-10-88)

आस्तिकता समस्त पुण्यों की खान और नास्तिकता ही सब पापों की जननी है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जिसमें सब आकाश आदि भूत बसते हैं और जो सबमें वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम वसु है।

जो दुष्ट कर्म करने हारों को रुलाता है इससे उस परमेश्वर का नाम 'रुद्र' है।

जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग व वियोग करता है वह परमात्मा 'जल' संज्ञक कहाता है। अथवा जो सबका जनक और सब सुखों का देने वाला है इसलिए भी परमात्मा का नाम 'जल' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आचार्य राम देव

आचार्य रामदेव उच्च कोटि के विद्वान, दार्शनिक तत्त्व वेदवेत्ता, सुधारक और धर्माचार्य थे, वे अपनी धुन के पक्के और उपयुक्त स्वभाव के थे, उनकी वाणी में महान् शक्ति थी, उनकी रुचि सांसारिक भोगों के प्रति नहीं थी, उनका ध्यान तो देश धर्म और जाति की सेवा लिये था। जब स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल काँगड़ी के लिये कार्यकर्त्ताओं का आह्वान किया तो वे भी आगे आये। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के लिये लम्बे समय तक काम किया तथा कन्या गुरुकुल देहरादून के लिये तो उन्होंने अपना जीवन ही लगा दिया। उनका जन्म का नाम रामदास था परन्तु उन्होंने अपने नाम रामदेव को ही सार्थक किया। नारी जाति को अशिक्षा, लोकाचार, परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास की चारदीवारी से उन्मुक्त कर विशुद्ध आर्य संस्कृति के जागरूक वातावरण में लाकर खड़ा करना उनके जीवन का लक्ष्य था। महर्षि दयानन्द सरस्वती का उन पर विशेष प्रभाव था। उनके समय में लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति चल रही थी, निश्चित है कि इस पद्धति से भारतीयता की भावना की नष्ट होना स्वाभाविक था। उस युग की एक आवश्यकता थी कि ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा हो जो युग वाहिनी आर्य सभ्यता तथा संस्कृति से ओत-प्रोत हो। महर्षि दयानन्द भी यही चाहते थे। गुरुकुल काँगड़ी इसी भावना का साकार आदर्श था। महात्मा मुन्शीराम के साथ आचार्य रामदेव भी थे। पर क्या इससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सकती थी।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यकता थी कि कन्याओं के लिये भी वे ही सुविधाएँ दी जाएँ जो लड़कों के लिये दी गई थीं। दिल्ली के दानी सेठ रघुमल की ओर से कन्या गुरुकुल खोलने की घोषणा तथा एक लाख रुपये दान की घोषणा की गई। इस समाचार से आचार्य जी का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। 1923 में दीपावली के दिन दरियागंज की कोठी में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के संरक्षण में एक कन्या गुरुकुल प्रारम्भ किया गया। इसी कन्या गुरुकुल को बाद में देहरादून ले जाया गया, इस गुरु-कुल की शिक्षा प्रणाली पाठ्य विधि के निर्माण में आचार्य जी का विशेष योग था। कन्या गुरुकुल की पाठ्य विधि आचार्य जी की विद्वता, प्रतिभा और उदारता का प्रति-बिम्ब है। यह प्राचीनता और आधुनिकता का अद्भुत सम्मिश्रण है। आदर्श और व्यवहार का मधुर सामंजस्य है।

आचार्य जी ने शिक्षा के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिये भी निरन्तर कार्य किया। वे आर्यसमाजों के उत्सवों में बड़े सहज स्वाभाविक शैली में विद्वतापूर्ण भाषण देने की क्षमता रखते थे। 1936 में आचार्य रामदेव जी आर्य प्रति-

निधि सभा पंजाब के प्रधान और सार्वदेशिक सभा के वरिष्ठ उप-प्रधान बन गये थे।

यदि गुरुकुल काँगड़ी के पुस्तकालय को देखा जाये तो अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलेंगे जिसमें आचार्य जी के लगाये चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। वे स्वाध्यायशील थे। उन्होंने वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के मूल पाठ के साथ-साथ अंग्रेजी अनुवाद भी पढ़े थे। अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से उन्होंने बौद्ध और जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया था।

आचार्य जी का व्यक्तित्व बहुत गौरवपूर्ण था। उनका रहन-सहन भी बहुत सादा था। उनके वस्त्र कीमती तो नहीं थे पर वे साफ-सुथरे होते थे।

आर्यसमाज के क्षेत्र में उनके योगदान को सदैव याद किया जायेगा। महान् पुरुषों के जीवन आने आली पीढ़ियों के लिये ज्योति स्तम्भ का कार्य करते हैं। आचार्य रामदेव भी ऐसे ही ज्योति स्तम्भ थे। महात्मा नारायण स्वामी ने लिखा है, अंग्रेजी भाषा के अध्यापक राम देव से उनका परिचय गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर हुआ था। उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि राज्य और प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों में ब्राह्मण को क्षत्रिय के अधीन रहना पड़ेगा। बस पण्डित अखिलानन्द और पंडित तुलसी राम इसी बात से उनके घोर शत्रु बन गये परन्तु वे पीछे नहीं हटे। उन्होंने मौलाना मौहम्मद अली, शौकत अली जैसे लोगों को मुंहतोड़ जबाब दिया क्योंकि उनकी विद्वता अपार थी।

उनकी लेखन शक्ति भी उनके व्यक्तित्व का परिचय देती है। परिणामतः भारत वर्ष का इतिहास, आर्य और दस्यु, फाउण्टेन हैड आफ रिलीजन उनकी विद्वता का सशक्त प्रमाण है।

कन्या गुरुकुल देहरादून तो उनका वास्तव में स्मारक है। उनकी सुपुत्री श्रीमती दमयन्ती कपूर उसी त्याग और तपस्या से इस संस्था का संचालन कर रही हैं। शब्द के प्रचलित अर्थों में भले ही वे शहीद न हों पर मैं उन्हें शहीद ही मानता हूँ। उन्होंने आर्य समाज के लिए अपने आप को शहीद कर दिया।

उनकी स्मृति में सादर विनत श्रद्धांजलि।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 5 अगस्त, 1990)

जातीय आधार पर आरक्षण सामाजिक विषमताओं में वृद्धि कर रहा है

आर्यसमाज जन्म के आधार पर किसी जाति की बात को स्वीकार नहीं करता। यहां पर गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर वर्ण व्यवस्था पर बल दिया गया है। वैदिक धर्म में कहीं पर भी जन्म के आधार पर किसी को अछूत अथवा पिछड़ा वा अगड़ा कहने की बात को नहीं माना गया। ये जातियाँ समय के प्रवाह के फलस्वरूप बनती चली गयीं और एक ऐसा समय आया जब जन्म को ही आधार माना जाने लगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पुनः इस विषय को सामाजिक व्यवस्था को बदलने के उद्देश्य से उठाया और वे स्वयं तथा बाद में उनके अनुयायी, आर्यसमाज के सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले लोग इस दिशा में सफल भी हुए, परन्तु जब जाति के आधार पर आरक्षण की सुविधा दी जाने लगी, तो वही लोग पुनः अनुसूचित कहलाने की दिशा में प्रवृत्त हो गए। आर्यसमाज के गुरुकुलों में किसी को पता भी न होता था कि वे किस जाति में जन्मे हैं, पर जब वे जीवन-यापन के लिए बाहर निकले तो सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं के लोभ को वे भी संवरण न कर सके। किसी का नाम लिखना उचित नहीं है, पर अपनी बात को कहने के लिए नामों का स्मरण आवश्यक है। श्री रामचन्द्र 'विकल' सांसद सुनाया करते हैं कि उनके दादा के समय एक हरिजन ने प्रश्न उठाया कि मेरी बेटी के साथ विवाह कौन करेगा, तो उन्होंने कह दिया कि यह लड़का सामने खड़ा है, इसके साथ विवाह कर दीजिए। यह आर्यसमाज का आदर्श था। कुछ दिन बाद वही हरिजन आरक्षण की सुविधा लेने लगे।। प्रसिद्ध आर्यनेता श्री पृथ्वी-सिंह आजाद ने कहा कि हमारे साथ रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं हो रहा है। इस पर श्री लक्ष्मीदत्त दीक्षित ने कहा कि निश्चय ही आपके साथ रोटी-बेटी का व्यव-हार होगा, पर आप आर्यसमाजी तो बनिए। वे बोले कि मैं तो आर्यसमाजी हूं। श्री दीक्षित ने कहा कि आप राजनीति में तो हरिजन हैं क्योंकि आरक्षित स्थान से चुनाव लड़ते हैं। आपको सबके बराबर स्थान दिया जा रहा है, पर आप उस स्थान को कुछ सुख-सुविधाओं के कारण ठुकरा रहे हैं। आर्यसमाज आपको जो देना चाहता है, वह आप ले ही नहीं रहे। निश्चय ही आर्यसमाज तो गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार जाति का निर्धारण करना चाहता है, पर हमारे हरिजन भाई

आरक्षण की चकाचौंध से भ्रमित हो गए हैं । एक बार किसी शास्त्रार्थ के दौरान विपक्षी ने कहा कि हम आपकी वर्णव्यवस्था को तब मानेंगे जब आप इन हरिजनों के घर का दूध पीलेंगे। । श्री रघुवीर सिंह शास्त्री वहां पर थे । उन्होंने दो युवकों की ओर वहीं पर इशारा किया और वे गटागट दूध पी गए और आर्यसमाज की जय का नारा लग गया । इसी प्रकार श्री ब्रह्मानन्द दण्डी कहा करते थे कि मैं अपने शिष्यों को ब्राह्मण बनाने की कोशिश कर रहा हूं पर ये अब भी जब विवाह आदि की बात चलती है, तो अपनी जन्मना जाति की ओर उन्मुख होते हैं। देश में जो हरिजनों ने सामजिक-आर्थिक पिछड़ापन भोगा है, आर्यसमाज तो उन्हें समान अधिकार देना चाहता है, पर वे लेना ही नहीं चाहते क्योंकि सरकार उन्हें जो सुविधाएं दे रही है, वे ज्यादा लुभावनी हैं । इस प्रकार सरकार ही उन्हें आरक्षण देकर ऊपर नहीं उठने देना चाहती ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का एक वक्तव्य ध्यान देने योग्य है—"जो कोई जन्म से वर्णव्यवस्था माने और गुण कर्म के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ अत्यन्त नीच अथवा क्रिश्चियन, मुसलमान हो गया हो ; उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? तब यहीं कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म को छोड़ दिया, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हों, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना ही अवश्य चाहिए ।" वह वक्तव्य निश्चय ही किसी भी नृशास्त्र-समाजशास्त्र के सिद्धान्तों पर खरा उतरेगा । सामाजिक व्यवस्था का यही नियम है और यही होना भी चाहिए, जो जैसा करे उसे वैसा ही वर्ण मिले । हम कर्म फल में विश्वास करते हैं—'अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्' । जब हम भगवान् श्रीकृष्ण के इस उपदेश को अन्य जन्म के लिए सत्य मानते हैं तो यहां क्यों नहीं मानते । हमारे सिद्धान्त तो सर्वत्र एक समान ही होने चाहिएं । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के आठवें अध्याय में 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः' की सुन्दर व्याख्या की है—'ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परंतप, कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणः।' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए 'कर्माणि प्रविभक्तानि' कर्म विभाग किए हैं। आगे चलकर भगवान् कृष्ण ने विभिन्न वर्णों की विशेषताएं भी बताई हैं । यहां विस्तारभय से उनको देने की आवश्यकता नहीं है : परन्तु एक श्लोक बहुत ही प्रासंगिक है जो आर्यों के लिए भी ग्राह्य है :

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रिया ज्जातमेवन्तु विद्या द्वैश्यान्तथैव च ।। 10 । 65

शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है और ब्राह्मण शूद्रता को, वैसे ही विद्या आदि

की प्राप्ति के द्वारा क्षत्रिय व वैश्य भी ब्राह्मणत्व को, और अच्छे गुणों तथा उच्च वर्णों के कर्त्तव्य कर्मों को छोड़कर शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं।

कुछ लोग मनुस्मृति की दुहाई देते हैं कि वहां पर जन्मना जाति व्यवस्था की बात कही है। यह भी नितान्त भ्रामक है। मनु का विधान इस प्रकार है— लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुख बाहूरूपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्। (1—31) ऐसी ही मान्यता वेदों में भी प्राप्य है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्य कृतः, उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्‌भ्यां शूद्रोऽअजायत। (यजु० 31—11) इस प्रकार मनु के विचार निश्चय ही वैदिक हैं। यदि कहीं पर कुछ अकथनीय है, तो वह प्रक्षेप है। मनुस्मृति के अध्याय-1 के 88, 89, 90, 91 श्लोकों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चारों वर्णों के गुण धर्म अलग हैं और ये जन्म के अधार पर नहीं बल्कि गुणों और कर्मों के आधार पर व्याख्यायित किए जाते हैं।

जो हमारे सनातनी भाई महाभारत, रामायण, पुराण व अन्य ग्रन्थों की बात मानते हैं, वे भी यदि खुली आंखों तथा खुले मन से इन ग्रन्थों का अध्ययन करें तो वे पाएंगे कि वहां पर भी जाति जन्म से नहीं, अपितु वर्णव्यवस्था कर्म के आधार पर मानी गई है। 'इन्द्रो ब्राह्मणः पुत्रः क्षत्रियाः कर्मस्य कारणम्' (महाभारत, शान्तिपर्व 43—11), 'गणिका गर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः। तपसा बाह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम्॥ (भविष्यपुराण बह्मपर्व 43—28), 'शूद्रोऽपि आगम सम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः।' (ब्रह्मपुराण 53—223) 'कर्म प्रधान विश्व रचिराखा। जो जस करहिं सो तस फल चाखा।.' (गोस्वामी तुलसीदास)। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्चते।'

अच्छा तो यह रहता कि उपर्युक्त संस्कृत पंक्तियों की सही व्याख्या करते हुए, अपने विषय का प्रतिपादन किया जाता, पर स्थान की सीमाएं हैं और इस लेख का आवश्यक पहलू है कि हमारी सरकार क्या करना चाहती है।

हमारे इतिहास में ऐसे नाम अनेक हैं जो निम्न कुल में उत्पन्न होने पर भी ऊंचे स्थान को प्राप्त हुए; विदुर दासीपुत्र थे, पर वे महामन्त्री थे। सुदामा जन्म से ब्राह्मण थे, पर वे आर्थिक रूप से पिछड़े थे। फिर भी वे मांगना नहीं चाहते थे। वे आरक्षण नहीं चाहते थे। वाल्मीकि का स्थान कितना ऊंचा था? भक्त शिरोमणि रविदास की आराधना की जाती है। ऐसे नामों की लम्बी सूची बनेगी।

साम्प्रदायिक जातीयता का विरोध महात्मा गांधी ने भी किया था। 1933 में अंग्रेज सरकार ने विभिन्न साम्प्रदायिक वर्गों को एसेम्बली में प्रतिनिधित्व देने के लिए 'कम्यूनल एवार्ड' के नाम से सुझाव रखा गया था। गांधी जी ने इसका विरोध किया था। वे प्रावदा जेल में थे। उन्होंने वहीं भूख हड़ताल शुरू कर दी। यह वास्तव में ब्रिटिश सरकार की शरारत थी। वे हिन्दुओं के पिछड़े वर्गों को तथा सिखों को भी मुसलमानों और ईसाइयों की भांति प्रतिनिधित्व देना चाहते थे। गांधीजी ने इस बात

को पहचाना था। वे मानते थे कि इससे देश कमजोर होगा। यह अवश्य है कि इससे शासक सबल होगा।

सम्भवत: यही मनोविज्ञान अब भी कार्य कर रहा है। लोगों को टुकड़ों में बांट देने से वर्तमान शासक सबल हो सकता है। वी० पी० मण्डल ने इतनी जातियां गिनाई हैं, जिनकी कल्पना करना भी मुश्किल है। सम्भवत: सरकारी रिकार्ड में भी उनका अस्तित्व नहीं है। आश्चर्य यह है कि सभी राजनीतिक पार्टियां इसको अपनाने से कतरा रही हैं। साथ ही इसका विरोध करने से भी कतरा रही हैं। इसका एकमात्र कारण, उनकी दृष्टि वोट बैंक पर लगी होना है।

आर्यसमाज के कुछ नेता भी जब तक आर्थिक स्थिति का निर्धारण नहीं हो जाता, जातीय आधार पर ही आरक्षण देने की बात करते है। यह सामाजिक न्याय नहीं है। सामाजिक न्याय तो महर्षि दयानन्द के दर्शन में है, जहां पर वे सभी के लिए समान शिक्षा व्यवस्था की बात कहते हैं और बाद में योग्यता के आधार पर कार्य व्यापार चयन की बात कहते हैं। वे राजा और रंक सभी के लिए समान वातावरण एवं समान शिक्षा व्यवस्था की बात कहते हैं। उन्होंने स्त्री और शूद्रों के लिए वेद-वाक्य उद्धृत करके उनके अध्ययन की वकालत की है।

स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने कभी सोचा भी नहीं था कि स्वतन्त्रता के बाद ये वर्तमान शासक पुन: देश को इस प्रकार जातियों को स्वार्थों के श्रृंखला में बांट देंगे। ये अपनी राजनीति को चमकाने के लिए वर्ग-युद्ध को आमन्त्रण देंगे और देश की एकता को पुन: खंडित करने की दिशा में उद्यत होंगे।

जन्मना जाति के आधार पर किसी प्रकार का आरक्षण न्याययुक्त नहीं है। जाति के आधार पर किसी को पिछड़ा मानना भी उचित नहीं है। आपात्काल में जब झुग्गी वालों को पुनर्वास कालोनियों में बसाया गया तो भी यही कहा गया था कि इन्हें रहम की नहीं, बल्कि सम्मान देने की आवश्यकता है। जो उस समय यह कहते थे, वे ही आज फिर रहम दिखाना चाहते हैं।

सभी को समान मानना इस सामाजिक व्यवस्था का अंग होना चाहिए। अयोग्य को स्थान न देकर, उन्हें योग्य बनाने का प्रयास करना चाहिए। योग्य बनने के लिए सभी प्रकार के आरक्षण देने चाहिएं।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 9-9-90)

हिन्दी भाषा और राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता को ईंट, पत्थर और छेनी, हथोड़ों से तैयार नहीं किया जा सकता। यह तो दिलों और दिमागों में चुपचाप उत्पन्न होकर विकसित होती है। यह प्रक्रिया केवल शिक्षा की प्रक्रिया है। यह एक धीमी प्रक्रिया है पर स्थायी और दृढ़ प्रक्रिया है। यह शब्द डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन ने 1961 में राष्ट्रीय एकता परिषद में व्यक्त किये थे। यह सुनिश्चित है कि राष्ट्रीय एकता को विकसित करने का महत्वपूर्ण साधन शिक्षा है। शिक्षा ही हमारे राष्ट्रीय दृष्टिकोण को व्यापक बनाती है तथा हमारे हृदयों में छिपी हुई बलिदान और सहिष्णुता की भावना को विकसित करती है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से ही हमारी वैचारिक संकीर्णता समाप्त होती है जब हम क्षेत्रीय भाषाओं, धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म की ओर उन्मुख होते हैं तब हमारा राष्ट्रीय संगठन सुदृढ़ होता है और हम सर्वांगीण उन्नति करते हैं।

भारत एक विशाल देश है, इसमें विभिन्न भाषाएँ और बोलियां हैं। अधिकांश लोग सरल भाषा में बोली हुई संस्कृत को समझ लेते हैं, क्योंकि यह भाषा उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत की सभी भाषाओं की शब्द स्रोत है। मराठी, गुजराती, बंगाली, हिन्दी, तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द हैं। संस्कृत से विकसित हुई जो आज की सर्वाधिक प्रचलित भाषा है, वह हिन्दी है। हिन्दी को कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सभी लोग समझ लेते हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां पर हिन्दी को न समझा जाता हो। इस कार्य को करने में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति का कार्य सराहनीय है।

सामाजिक, व्यापारिक, राजनीतिक क्रान्ति के लिए राजा राममोहन राय से लेकर आज तक के सभी समाज सुधारकों ने, राजनेताओं ने तथा दार्शनिकों ने हिन्दी भाषा के माध्यम से कार्य किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द सेन, ईश्वर चन्द विद्यासागर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय आदि महानुभावों ने राष्ट्रीय एकता के लिए तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन को जन-आन्दोलन बनाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह हिन्दी ही थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन कांग्रेस का आन्दोलन माना जाता है। कांग्रेस पार्टी की प्रारम्भ की भाषा अंग्रेजी थी पर जब इस आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप दिया गया तब महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार भगत सिंह, चन्द्र शेखर

आजाद सभी ने अपनी बात हिन्दी में कही। फलस्वरुप जब देश आजाद हुआ, तब एक मत से यही निर्णय लिया गया था कि हिन्दी राष्ट्र भाषा होगी।

भाषा, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, क्षेत्र इन संकीर्णताओं से उठकर यदि हम सम्पूर्ण राष्ट्र को एक करना चाहते हैं, तो हमें अपनी क्षुद्रताओं का त्याग करना होगा और इसके लिए यही आवश्यक है कि हम हिन्दी को ईमानदारी से अपनायें हिन्दी की सबसे बड़ी दुश्मन अंग्रेजी है अंग्रेजी तो असल में जादूगरनी है स्वतन्त्रता से पहले और उसके बाद भी अंग्रेजी के समर्थकों ने भारतीय भाषाओं के साथ जमकर खिलवाड़ किया। राष्ट्र भाषा हिन्दी को पंगु बनाने का प्रयास किया। फिर भी अंग्रेजी जानने वाले पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। अंग्रेजी में सारा सरकारी कामकाज होता है, अंग्रेजी बोलने वाले को इज्जत मिलती है, अंग्रेजी बोलने वाले को बड़ा आदमी माना जाता है। दुकानदार अंग्रेजी नहीं जानता फिर भी वह बोर्ड अंग्रेजी में लिखवाता है। सामाजिक संगठनों की कार्यवाहियां अंग्रेजी में लिखी जाती हैं। वे संस्थाएँ जिनके उद्देश्यों में हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार की बात लिखी होती हैं, वे भी बैठकों में अंग्रेजी का सहारा लेते हैं। आप ही बताइये अंग्रेजी जादूगरनी है या नहीं।

स्कूलों, कालेजों में अंग्रेजी अनिवार्य विषय है। यद्यपि अंग्रेजी कोई पढ़ना नहीं चाहता। कालेज स्तर पर हम अंग्रेजी को, जैसे छात्र-छात्राओं को पढ़ा रहे हैं और जिस तरह पढ़ा रहे हैं, वह एक मजाक है फिर भी अंग्रेजी पढ़ाई जा रही है। कभी-कभी कुछ छात्र आते हैं और कहते हैं कि हमें यह अध्यापक नहीं, वह चाहिए उसका कारण मैं आपको बताऊं, बात गोपनीय है। यह छात्र उस अध्यापक को मांगते हैं, जो कुंजियों की शैली पर पढ़ाता है, जो स्वयं कुंजियां लिखता है और जो अंग्रेजी नहीं हिन्दी, पंजाबी, हरियाणवी अथवा किसी दूसरी भाषा के टूटे-फूटे शब्दों का प्रयोग अधिक करता है। फिर भी देश को चलाने में इस देश के नियामकों ने अंग्रेजी की लगाम पकड़ी हुई है। वे सोचते हैं कि यदि अंग्रेजी है तो सारा देश एक है। वे यह भी सोचते हैं कि यदि अंग्रेजी है तो उनका सम्मान विदेशों में भी है। परन्तु होता इसका उलटा ही है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी बोलने पर जो सम्मान श्री अटल बिहारी वाजपेयी को मिला था, ऐसा सम्मान विदेशों में कभी किसी राष्ट्रीय नेता को नहीं मिला। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, परन्तु ऐसा नहीं है। अंग्रेजी न जापान में बोली जाती है, न रूस में और न जर्मनी में और न इटली में। और तो और इंग्लैंड से केवल 26 किलोमीटर की दूरी पर जो यूरोपीय देश पड़ते हैं, जैसे फ्रांस, डेनमार्क और स्वीडन, इनमें भी अंग्रेजी नहीं बोली जाती।

अब बात आती है कि हमारे देश में बहुत-सी भाषायें हैं, फिर हिन्दी ही क्यों हो। इसका स्पष्ट कारण है कि हिन्दी भारत के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाती है। हिन्दी भारत के सभी प्रान्तों में समझी जाती है। तमिलनाडु में कभी-कभी राजनैतिक कारणों से हिन्दी का विरोध किया जाता है। पर एक सर्वेक्षण के बाद यह पाया गया कि मद्रास के 46 सिनेमाघरों में से 38 में हिन्दी फिल्में चल रही थीं। फिल्मों को देखने

वाले आम लोग होते हैं और वे ही वास्तविक भाषा स्वरूप बनाते हैं किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता के केवल चार चिह्न हैं—राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय संविधान। अतः राष्ट्र भाषा का होना तो राष्ट्रीय एकता के लिए नितान्त आवश्यक है। रूस में 23 भाषायें बोली जाती हैं पर फिर भी राष्ट्रीय भाषा रूसी है, जो सारे देश को जोड़कर रखती है। उसी तरह हमारे देश में भी 14 प्रमुख भाषायें तथा अन्य अनेक बोलियों के होते हुए एक भाषा का राष्ट्र-भाषा होना इस देश को एकता की ओर ले जाने में अनिवार्य तत्व है। और निश्चय ही यह कार्य हिन्दी कर सकती है। भाषा प्रयोग से समृद्ध होती है, जब तक हम इसका प्रयोग नहीं करेंगे तो यह समृद्ध होगी कहां से। और अंग्रेजी के दानव हमें यह करने नहीं दे रहे हैं। पहली आवश्यकता अंग्रेजी को खत्म करने की ही है। नई शिक्षा नीति में हिन्दी को समुचित स्थान दिया गया है। पर अंग्रेजी के वर्चस्व को समाप्त करने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया गया। संस्कृत जो पूरे देश की भाषाओं को शाब्दिक ऊर्जा प्रदान करती है, उसकी ओर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। समस्त भारतीय भाषाओं की समान शब्दावली संस्कृत से भरपूर है। पहले संस्कृत भाषा एकता की वाहक थी, अब हिन्दी ही वह कार्य कर सकती है। हम मानते हैं भाषा-शिक्षण में पहला स्थान मातृभाषा को दिया जाना चाहिए और दूसरा स्थान हिन्दी भाषा को और इसके बाद तीसरी भाषा कोई विदेशी हो सकती है, या उत्तर वालों के लिए दक्षिण की भाषा और दक्षिण वालों के लिए उत्तर की भाषा। इस प्रकार के आदान प्रदान से हमारा संगठन सुदृढ़ होगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या हम हिन्दी का सही प्रचार कर रहे हैं ? दिल्ली भारत की राजधानी है। यहाँ पर चार केन्द्रीय विश्वविद्यालय भी हैं। इन सभी में हिन्दी पढ़ाई भी जाती है और यहां के प्राध्यापक हिन्दी के लिए सतत प्रयत्नशील भी लगते हैं। ये अपनी नौकरी के लिए चार या छः घण्टे लगाते होंगे बाकी सारा समय हिन्दी के लिए ही देते हैं। पुस्तकें लिखते हैं, पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते हैं। निरन्तर प्रकाशकों और संपादकों से सम्पर्क बनाये रखते हैं। कभी-कभी अपनी पुस्तक के प्रकाशन के लिए प्रकाशक को आर्थिक सहायता भी प्रदान करते हैं। कभी-कभी वे अपनी पत्रिका स्वयं भी निकालते हैं। इस काम में अंग्रेजी और विज्ञान के प्राध्यापक भी उनकी सहायता करते हैं। पर क्या इससे हिन्दी का प्रचार प्रसार हो रहा है ? राष्ट्रीय शैक्षिक एवं प्रशिक्षण अनुसंधान परिषद की किताब में कविवर बच्चन का परिचय अमिताभ बच्चन के पिताजी कहकर दिया जाता है। और शब्द लिखे पाते हैं "परयत्न, पतरिका, मिण्ट, सहमती और सकूटर। यदि गलती से बच्चा सही शब्द लिख देता है तो उसकी 'टीचर' उसे काटकर गलत कर देती है। यह विडम्बना ही है कि इससे हिन्दी का प्रचार प्रसार कैसे हो ?

हमारी दृष्टि महर्षि दयानन्द की ओर जाती है, जिन्होंने गुजराती भाषी होते हुए भी, संस्कृत का विद्वान होते हुए भी हिन्दी में लिखा था। वे हिन्दी के आत्मकथा लेखकों में पहले हैं। जितने पत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती के लिखे उपलब्ध मिलते हैं, उतने

किसी अन्य महापुरुष के नहीं। हमारी हृदय भावना सहज ही उमड़ पड़ती है, कि धन्य है वह ऋषि जो हमें रास्ता दिखा गया !

महर्षि दयायन्द सरस्वती ने तीन सभाओं के संविधान परोपकारिणी सभा, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा और आर्य समाज के संविधान आज से सौ साल से भी अधिक पहले हिन्दी में बनाये थे। आज भी पंजीयक कार्यालय में वही भाषा ज्यों की त्यों प्रयुक्त होती है।

यदि हम चाहते हैं हमारा राष्ट्र संगठित हो, हम शक्तिशाली हों, तो हमें एक होना ही पड़ेगा और वह एकता हिन्दी भाषा के प्रयोग से आयेगी। राष्ट्रपति श्री रामास्वामी वेंकटरमन हिन्दी जानते हैं। उन्होंने डा० शंकर दयाल शर्मा को हिन्दी भाषा में शपथ दिलायी थी। ऐसे राष्ट्रीय नेताओं के हिन्दी प्रयोग से हिन्दी को बल मिलेगा और हम उनसे भी अपेक्षा करेंगे कि जब स्वतन्त्रता दिवस पर अथवा गणतन्त्र दिवस पर दूरदर्शन और आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम संदेश दें तो वे केवल अंग्रेजी में न दें, बल्कि हिन्दी में स्वयं पहले दें और किसी अन्य भाषा में बाद में।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 23-9-90)

बहुत से गुणों के होते हुए भी जिस व्यक्ति में आत्मश्लाघा का रोग आ जाता है, उसका हृदय राग-द्वेष का घर बना रहता है। **—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती**

जो सब ओर से सब जगत् का प्रकाशक है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'आकाश' है।

जो अत्यन्त पवित्र और जिसके संग से जीव भी पवित्र हो जाता है। इसलिए उस ईश्वर का नाम 'शुक्र' है।

जो सबमें सहज से प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वर का नाम 'शनैश्चर' है।

जो एकान्तस्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं, जो दुष्टों को छोड़ने और अन्यों को छुड़ाने हारा है इससे परमेश्वर का नाम 'राहु' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

विजयादशमी
भारतीय चेतना की उदात्तता का प्रतीक

भारतीय जन मानस से राम का स्थान श्रद्धा समन्वित है। हम उनके गुणों का सादर स्मरण करते हैं। वे शक्ति शील और सौन्दर्य के प्रतीक हैं। संपूर्ण कथानक में उनकी मर्यादाओं का आंकलन कहीं पर भी उन्हें उस श्रद्धा के उच्चतम सोपान से स्खलित नहीं होने देता। रामकथा का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। अनेक देशों में लोग अपने नाम के प्रारम्भ में अथवा बाद में 'राम' शब्द का प्रयोग करते हैं। राम का 'रामत्व' महान् है, यह उदात्त है। राम कथा की लोकप्रियता का भी यही कारण है। मानव समाज में जिस उदात्त एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है वे सभी इस राम कथा में विद्यमान है।

हमारा समाज सदा से, युगों से अनाचार, शोषण, अत्याचार, दमन, आतंक और यातनाओं से पीड़ित रहा है। ऐसी स्थिति में जीवन में सामान्य मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। वह निराश हो जाता है। फिर उसकी दृष्टि किसी एक पुरुष की ओर जाती है। समाज अपनी आकांक्षाएं और आशाएं ऐसे ही लोकोत्तर पुरुष में केन्द्रित कर देता है। इन्हीं आकांक्षाओं, आशाओं, जनभावनाओं एवं सामाजिक आवश्यकताओं का परिणाम रामकथा है।

ऐसे ही महापुरुष राम की विजय से सम्बद्ध उत्सव विजयादशमी है। राम सदृश महापुरुष की ओर प्रत्येक युग की आकांक्षापूर्ण दृष्टि रहती है। ऐसा ही महापुरुष समाज को नेतृत्व दे सकता है तथा सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिला सकता है। आज भी सामाजिक दुरवस्था की स्थिति है। आज भी समाज के कल्याण के लिए उन्हीं सदृश संगठन कौशल की आवश्यकता है। बुराई का सामना करने के लिए उन्होंने समाज के सभी अंगों को संगठित एवं प्रशिक्षित किया था। उन्हीं के सहयोग से वे अन्यायी अत्याचारी रावण का संहार कर सके।

भारत में अनेक लोक कथाओं के साथ भी राम का नाम जुड़ा है। वस्तु-स्थिति यह है कि हम नाटकीय न्याय में विश्वास करते हैं। अच्छे को अच्छा फल मिले और बुरे का हश्र बुरा हो। भारतीय जनमानस को परम्परा एवं संस्कार में बुराई का विरोध करना विरासत में मिला है। परमात्मा से हम कामना करते हैं कि हमें ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि हम बड़े से बड़े अत्याचारी का विरोध कर सकें।

डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 7-10-90)

पं० शिवकुमार शास्त्री की स्मृति हमारी धरोहर है

पं० शिवकुमार शास्त्री अब हमारे बीच में नहीं हैं। यह सोचना ही हृदय विदारक है। संवेदनशील व्यक्ति इस कष्ट को सहन करने की सोचने में भी असमर्थ है। पं० शिवकुमार शास्त्री आधी-शताब्दी से भी अधिक समय तक वैदिक धर्म एवं आर्य समाज का प्रचार करते रहे, राष्ट्र को एक नई दिशा देते रहे, आर्य जगत के उच्च पदों पर रहे। संकट के क्षणों में हम लोग उनके पास उनके विचार जानने के लिए उनका सतपरामर्श लेने के लिए जाते रहे हैं।

पं० शिवकुमार शास्त्री का व्यक्तित्व निश्छलता, निर्मलता एवं आडम्बर हीनता से ओतप्रोत था। वे अपने से मिलने वाले को ऐसा महसूस ही नही होने देते थे कि वह व्यक्ति किसी भी प्रकार उनसे छोटा है। वे सहज मुस्कान के साथ, धीरे-धीरे सरल शब्दों में बात करते थे। उनकी विशेषता थी कि गम्भीर से गम्भीर परिस्थितियों में भी वे गम्भीर न होते थे। उनके मुखमण्डल पर सहज सरल मुस्कान रहती थी। एक बार दीवान हाल में राष्ट्रीय नेताओं को आमन्त्रित किया गया था। वर्षा घनघोर थी। वे भीग गए थे। उन्होंने एक धोती लपेट ली और सहज बने रहे। उनका भाषण भी हुआ और सदैव की भांति सराहा भी गया। ऐसे सहज प्रकृति के स्वामी पंडित जी थे।

पं० शिवकुमार शास्त्री लोकसभा के दस वर्षों तक सदस्य रहे। वे अपने क्षेत्र के लोगों की आवश्यकताओं के लिए तो आवाज उठाते ही रहे, परन्तु उन्होंने मानवता के लिए भी सदैव आवाज को बुलन्द किया। उनके भाषण सदैव मानवता के बिन्दुओं पर आधृत होते थे। वे वैदिक भावना से ओत-प्रोत थे। छुद्र राजनीति तो उन्हें छू भी नहीं सकती थी।

किसी भीप्रकार के पदों की प्राप्ति की लालसा उन्हें कभी नहीं रही। आर्य समाज में वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे, सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य तथा अन्य विभिन्न समितियों के सदस्य रहे, अनेक सार्वजनिक न्यासों के भी वे सदस्य रहे, परन्तु वे कभी भी इन पदों के पीछे नहीं भागे। पद चलकर उनके पास आए। वे सदा ही इस पंक से ऊपर बने रहे। उनसे संस्थाएं सुशोभित हुआ करती थीं।

दिल्ली की आर्य समाजों के मंच की तो वे शोभा थे। प्रत्येक आर्य समाज उन्हें आमंत्रित करती थी। किसी भी सभा के, कोई भी उत्सव उनके बिना पूरे न होते थे।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समापन समारोह में महामहिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी आए थे। उनसे आग्रह किया गया कि वे राष्ट्रपति के आने तक बोलते रहें, ताकि अगले वक्ता के भाषण के बीच व्यवधान न पड़े और वे धारा प्रवाह, अपनी चिरपरिचित सरस शैली में बोलते रहे। गतवर्ष तालकटोरा स्टेडियम में महामहिम उप राष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा आए थे। पं० जी भी आमन्त्रित थे, पर उनका स्वास्थ्य ठीक न था। वे नहीं आए। सायंकाल उन्होंने सभा प्रधान डा० धर्मपाल जी की उत्सव की सफलता पर बधाई देते हुए कहा कि मैं आज संस्कृति के सुयोग्य साधक डा० शंकरदयाल शर्मा के विचार साक्षात् सुनने से वंचित रह गया। ऐसे सरल थे पं० शिवकुमार जी शास्त्री।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा तथा दिल्ली की अनेक आर्यसमाजों तथा दिल्ली से बाहर की संस्थाओं में पं० शिवकुमार शास्त्री का अभिनन्दन एवं सम्मान उनके जीवनकाल में ही गया था। उनके आगमन से ही ये सभाएं, संस्थाएं स्वयं गौरवान्वित हुई थीं। तभी से दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का निश्चय था कि पं० जी के सम्मान में आर्यसन्देश का एक विशेषांक प्रकाशित किया जाए। यह संयोग की बात है कि यह अंक उनके आहत महोत्सव के अवसर पर तथा आर्य समाज के संस्थापक, युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस के अवसर पर पाठकों के हाथों में आ रहा है।

अन्त में, मैं सभी आर्य नेताओं, विद्वान-लेखकों तथा अपने सहयोगियों का धन्यवाद करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूं।

डॉ० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 21-10-90)

जल और जीवों का नाम नारा है, वे अयन अर्थात् निवास-स्थान हैं जिसका इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम 'नारायण' है।

जो आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देने वाला है इसलिए ईश्वर का नाम 'चन्द्र' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

दीपावली के दीए का सन्देश

अमावस्या की घनी अन्धेरी रात में दीपकों की एक लम्बी कतार निश्चय ही मन को आल्हाद एवं स्फूर्ति देने वाली होती है। दीपावली का दीया अकेला नहीं होता। यह अकेला हो तो इसका कोई महत्व ही नहीं है। इसका महत्व तो पंक्ति होने में है। इसका महत्व तो विस्तार में है। इसका महत्व तो एक सूत्रता में है। इसका महत्व तो संगठन में हैं। यह जरूरी नहीं है कि सभी दीयों का रंग रूप एक ही हो। ये दीए अलग-अलग रंग रूप के हो सकते हैं। ये बड़े-छोटे भी हो सकते हैं। ये दीए स्थान विशेष की परम्परा के अनुसार वृत्ताकार या चौकोर भी हो सकते हैं। आधुनिक विज्ञान के कारण यह आवश्यक नहीं है कि सभी दीयों में से एक-सी रोशनी निकले। रोशनी कम या ज्यादा हो सकती है। रोशनी का रंग भी अलग हो सकता है। रोशनी कम देर चलने वाली मोमबत्ती या ज्यादा देर चलने वाली बिजली के बल्ब की हो सकती है। यह रोशनी आंखों को लुभाने वाली हो सकती है। यह रोशनी चुंधियाने वाली हो सकती है। पर एक बात तो है कि यह रोशनी होती है। और रोशनी वह होती है जो रास्ता दिखलाए। जो प्रकाश दे। जो प्रकाश सही रास्ता दिखलाए, उसी को प्रकाश दिखाना कहते हैं। जो गलत रास्ता दिखलाए, वह रास्ता दिखलाना नहीं है, वह प्रकाश भी नहीं है। गलत रास्ता तो अविद्या, अंधकार तथा असत्य हैं। अतः रास्ता वही सही है जो सत्य का प्रकाश करे, जो सत्य के अर्थ का प्रकाश करे, जो सत्यार्थ प्रकाश हो। अतः सत्यार्थ प्रकाश दिखलाने वाला आज के दिन याद आता है। उसका तो विशेष महत्व है। वह सत्य का मार्ग आलोकित करके, आज ही के दिन तो अनन्त में विलीन हो गया था।

वह हमारा मार्ग प्रशस्त करने वाला दीपक था, वह हमारा दीपाधार था। उसने हमें सामाजिकता दी। उसने हमें सामुदायिकता दी। यही सन्देश दीवाली के दीए का है। केवल अपना ही मत सोचो, कुछ दूसरे का भी सोचो। स्वार्थी मत बनो, परमार्थी बनो।

"अयं निजः परो वा इति गणना लघु चेतसाम्, उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" इस भावना को केवल कागजों पर ही न रहने दो बल्कि इस बात को अपने जीवन में भी उतार लो। मनुष्य को केवल अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

आदमी चाहते तो हैं, कि विश्व हमारा गांव हो। वे विश्व नागरिक हों। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने विश्व को बहुत निकट भी ला दिया है, पर ऐसा लगता है

कि यह सब मुहावरे की भाषा रह जाएगी, क्योंकि लोग तो संकीर्णताओं में जकड़े जाने लगे हैं। उनके अन्दर क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता कूट-कूट कर भरी है। वे कबीलाई ही रह जाना चाहते हैं। क्या हो गया है कि वे केवल अपने कबीले के साथ ही तादात्म्य कर पाते हैं। उनकी आत्मीयता केवल उन्हीं से क्यों स्थापित हो पाती है। उन्हें भावनात्मक सुरक्षा वहीं क्यों मिलती है। यह विज्ञान की दृष्टि से समुन्नत पीढ़ी क्यों उलटी दिशा में लौट जाना चाहती है ? क्या हमारे ऋषि, मुनियों का, महापुरुषों का, राम और कृष्ण का, महावीर और बुद्ध का, नानक और दयानन्द का, गांधी और नेहरू का यही सन्देश था ? उनके विचारों में तो एक महान उदात्तता थी। आज का पढ़ा-लिखा आदमी क्यों संकीर्ण हो रहा है।

पिछले दिनों नेल्सन मण्डेला भारत आए। उन्हें यहां भारत रत्न से सम्मानित भी किया, पर क्या इसकी भावना को अन्तर्मन से लोगों ने स्वीकार किया। उसने रंग-भेद के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। गांधी ने भी तो यही किया था। सारा भारत उसके साथ था। इस कार्य में सारा विश्व उसके सम्मोहन में बंधा था। मण्डेला ने बार-बार गांधी का नाम लिया। वे भारतीयता के आज आदर्श पुरुष हैं। भारतीयों ने अपनी विचार-धारा को उसके माध्यम से क्रियान्वित होते देखा है।

वास्तव में तो महत्व क्रियान्वयन का ही है। ज्ञानवान होना अच्छा है, पर क्रियावान होना उससे अच्छा है। आओ हम भी सबको समान बनाएं। पर हमारी सरकार, हमारा मण्डल तो जोड़ते नहीं तोड़ते है, वे विभाजक रेखाएं खींच रहे हैं। वे विश्व नागरिकता से कबीलाई नागरिकता की ओर लौट रहे हैं। इससे तो देश को कुछ भी न मिलेगा।

दीपावली का दीया एकसूत्रता का सन्देश देता है, प्रकाश का सन्देश देता है। यह दीया एक ध्येय का सन्देश देता है, यह ऊर्ध्वगमन का सन्देश देता है।

आओ हम अपनी सामुदायिकता को पहचानें और संगठित हो जाएं ताकि सब मिलकर प्रकाशमार्ग को प्रशस्त कर सकें।

—डॉ॰ धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 28-10-90)

राष्ट्रोत्थान में आर्यसमाज का योगदान

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शताधिक वर्ष पूर्व आर्यसमाज की स्थापना करते समय यह कल्पना की थी कि आर्यसमाज सदैव संसार के उपकार के लिए कार्यरत होगा। आर्यसमाज मनुष्य मात्र में आई विकृतियों का परिष्कार करेगा। आर्यसमाज लोगों को वेदानुयायी बनने की प्रेरणा देगा। आर्यसमाज किसी का भी, किसी भी दशा में पक्षपात न करेगा। आर्यसमाज जाति-पांति, छुआछूत, क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता से ऊपर उठकर, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व बन्धुत्त्व एवं सह-अस्तित्त्व के लिए कार्य करेगा। आर्यसमाज दलितों को समान अवसर उपलब्ध कराएगा। आर्यसमाज नारी जाति के कल्याण के लिए कार्य करेगा। यह प्रश्न उठता है कि क्या आर्यसमाज इन दिशाओं में कोई प्रगति कर सका है ? इसका उत्तर हां में दिया जा सकता है। आर्यसमाज ने सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में सराहनीय कार्य किया है। आर्यसमाज ने लोगों में वेदानुयायी बनने की प्रेरणा को सशक्त स्वर प्रदान किया है। सभी आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर वेदसम्मेलन अवश्य आयोजित किए जाते हैं। यह बात अलग है कि वेदमार्ग का अनुसरण कितने लोग करते हैं। आर्यसमाज तो वर्णाश्रम व्यवस्था का पक्षधर है, पर हमारे कुछ आर्य नेताओं ने पिछले दिनों प्रधानमंत्री श्री वी० पी० सिंह द्वारा घोषित आरक्षण नीति का समर्थन करके वर्णाश्रम व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया है। आर्यसमाज की शताधिक वर्षों की संघर्षपूर्ण यात्रा उपलब्धियों को धूल में मिला दिया है। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त ब्रह्मचारी जन्मना जाति को भूल चुके थे, पर इस आरक्षण ने उन्हें उनकी जन्म की जाति याद दिला दी। प्रत्येक व्यक्ति सुविधालोलुप होता है। योगियों की बात नहीं कही जा रही है। यहां पर सामान्य संसारी व्यक्तियों की बात कही जा रही है। आर्यसमाजी भी जन्मना जातीय आधार पर सुविधाएं दिए जाने का पक्ष लेने लगे और विडम्बना तो यह है कि इन इने-गिने दिशा भ्रष्ट आर्यसमाजियों की बात को ही लोगों ने तथा सरकार ने आर्यसमाज की आवाज मान लिया।

आर्यसमाज के नाम पर अधिकृत वक्तव्य देने का अधिकार केवल सार्वदेशिक सभा को है। प्रेसमाध्यमों तथा सरकारी प्रचार तन्त्र को केवल सार्वदेशिक सभा के वक्तव्यों को ही आर्यसमाजी वक्तव्य कहने का अधिकार होना चाहिए। जो लोग अपने छुद्र राजनैतिक स्वार्थों के लिए आर्यसमाज के नाम का उपयोग कर रहे हैं। उनके वक्तव्यों को आर्यसमाज के अधिकृत वक्तव्य मानना एक अक्षम्य भूल है। आर्यसमाज के कुछ तथाकथित नेता प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता की बात भी करते हैं, उन्हें यह समझ-

लेना चाहिए कि वे ऐसा करके महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम के साथ, उस ऋषिवर के कर्तव्य के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। आर्यसमाज तो सार्वभौमिकता का पक्षधर है। पिछले दिनों कुछ लेखकों ने आर्यसमाज के ऊपर भी संकीर्ण साम्प्रदायिकता का आरोप लगाया है। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे है। आर्यसमाज का रास्ता संकरी गली में से नहीं गुजरता। आर्यसमाज में कठमुल्लापन तो है ही नहीं। आर्यसमाज में तो एक सराहनीय प्रवहमानता है। आर्यसमाज में तो प्रगति का सातत्य है। आर्य-समाज का आधार तो वेद-ज्ञान है जिसके ऊपर आज तक कोई भी संकरेपन का आरोप नहीं लगा सका। यह तो उस अमर वाणी का उद्घोषक है जो उदात्तता एवं विशदता की ओर ले जाती है।

आर्यसमाज सांस्कृतिक प्रतीकों की रक्षा का पक्षधर है और इसी आधार पर राम जन्मभूमि की रक्षा करना चाहता है। हर अच्छे कार्य के लिए आर्यसमाज सदैव तत्पर है। हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्यसमाज की ओजस्विता का, आर्यसमाज के सफल संघर्ष का स्मरण दिलाता है।

आर्यसमाज गौरक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील है, पर इस कार्य में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई है। राजनैतिक छलछद्म सदैव आड़े आते रहे हैं। अस्तु संघर्ष ही आर्यसमाज है। यह उसकी क्रूर नियति है। आर्यसमाज भविष्य में भी इसके लिए संघर्ष करता रहेगा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से 23 से 27 दिसम्बर, 1990 तक अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। उस समय भी इन सभी विषयों पर विचार किया जाएगा। और राष्ट्र को दशा-निर्देश मिलेगा। युवा शक्ति किसी भी संगठन का आधार होती है। आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि युवाकाल से ही उन्हें इस दिशा में, मानवता की दिशा में, सहबन्धुत्व की दिशा में, सह-अस्तित्त्व की दिशा में, सदाचार की दिशा में, वेदानुयायी जीवन यापन करने की दिशा में प्रवृत्त करने के लिए प्रयास किए जाएं। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा प्रतिवर्ष आर्य युवा महा-सम्मेलन का आयोजन करती है। सभी आर्य भाई-बहनों से निवेदन है कि वे इस दिशा में सहयोगी बनें। उनका सहयोग आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रचार-प्रसार में निश्चय ही सहायक होगा।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 4-11-90)

श्री राम मन्दिर एवं बाबरी मस्जिद

यह विवाद पर्याप्त समय से चल रहा है। इस राष्ट्रीय समस्या का समाधान वास्तव में है भी कठिन ही। इस देश को हम धर्म निरपेक्ष देश कहते हैं। यह देश धर्म निरपेक्ष हो नहीं सकता क्योंकि यहां के प्रत्येक व्यक्ति के मन में धर्म में आस्था है और ईश्वर में विश्वास है। इसलिए यहां का कोई भी व्यक्ति धर्म से विमुख हो जाए, यह सम्भव नहीं है। उसे धार्मिक तो होना ही है। वह धार्मिक हुए बिना अपने अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं कर सकता। इस देश का बड़े से बड़ा व्यक्ति भी जो यह घोषणा करता है कि मैं किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करता, वह भी समय समय पर पूजा-अर्चना करता हुआ देखा जा सकता है। धर्म दूसरा नाम कर्त्तव्य का है। यदि कर्त्तव्य करना है तो धार्मिक होना ही है। धर्म और कर्त्तव्य एक दूसरे के पर्याय हैं। धर्म यही तो सिखाता है कि हम कर्त्तव्य करें। कर्त्तव्य से तात्पर्य है कि वे कार्य जो हमें करने चाहिए। हमें करने वे ही कार्य चाहिए, जो सामाजिक हित के हों। जो केवल अपनी उन्नति तक सीमित न हों, बल्कि जिनसे सबकी उन्नति अपेक्षित हो। इसलिए सबके भले के लिए, किए गए कार्य ही, कर्त्तव्य हैं। वही धर्म हैं। राममन्दिर के निर्माण से अथवा बाबरी मस्जिद के बने रहने से यदि व्यक्ति धार्मिक बने रहते हैं, अर्थात वे सामाजिक हित में संलग्न रहते हैं, तो यह अच्छी ही बात हैं।

हमारे यहां धार्मिक होने का अर्थ साम्प्रदायिक लिया जाने लगा है। यदि कोई व्यक्ति धार्मिकता की बात करता है, तो एकदम कहा जाएगा कि वह साम्प्रदायिक हो गया है। यह बात बहुसंख्यक लोगों पर विशेष रूप से लागू होती है। जो अल्पसंख्यक हैं, उन्हें कुछ विशेषाधिकार भारतीय संविधान में दिए गए हैं। यह अच्छी बात है। पिछले दिनों श्रीमांगेराम आर्य ने समाचार पत्र की एक कतरन दिखाई थी जिसमें लिखा था कि जिन जिलों में अल्पसंख्यक बहुसंख्या में हैं, वहां पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद् की ओर से ऐसे पाठ्यक्रम चलाए जाएंगे, जिनमें अल्पसंख्यकों की भावनाओं को ध्यान में रखा गया है। इस तरह के पाठ्यक्रम से क्या सिद्ध होता है। क्या यह बहुसंख्यक लोगों के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं है।

भारत देश सदा से सहिष्णु रहा है। यहां 'जीओ और जीने दो' का उद्घोष सदा से होता रहा है। भारतीय संस्कृति और भारतीय वैदिक धर्म में ग्रन्थों पर स्थान-स्थान पर सहिष्णुता तथा सह-अस्तित्व के उद्घोष प्राप्य हैं। सम्भव है कि ऐसी पंक्तियां अन्य धर्मग्रंथों में भी हो। पर कुछ धर्म तो राज्यों द्वारा ही चलाए गए हैं। वे अपना

अस्तित्व इसी बात में मानते हैं कि दूसरों को समाप्त कर दो तभी अपना वर्चस्व रहेगा।

अयोध्या एवं बाबरी मस्जिद के विवाद में धार्मिक नेता तथा राजनेता सभी जुड़े हैं। बल्कि यह कहा जाए कि वहां पर धर्म और राज्य एक दूसरे का शोषण कर रहे हैं, अतिशयोक्ति न होगी। सामान्य जनता न इसकी गम्भीरता में जाती है और न ही उसके पास, इसे गहराई से समझने के लिए फुर्सत है तथा न ही इसको समझने लायक बुद्धि। कुछ गुट बने हैं, चाहे उन्हें धार्मिक कह लो या साम्प्रदायिक अथवा राजनैतिक। उनके नेता जैसा कहते हैं, जनता उसी प्रकार भड़क उठती है।

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार, सभी वर्गों के नेतृत्व को विश्वास में लेकर इस राष्ट्रीय एवं जातीय समस्या का समाधान खोजें। सभी वर्गों के नेता अपने-अपने समर्थकों को इस प्रकार ससझायें कि वे भड़कने के स्थान पर शान्त रहें। यह तभी सम्भव होगा, जब नेतृत्व आपस में सहमत हों। समस्या एक वर्ग की है और दूसरे वर्ग के नेता समझाएंगे तो इसका असर निश्चय ही उल्टा होगा। इस राष्ट्रीय समस्या पर गम्भीर विचार की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार की संवेदना से शून्य गम्भीरता की।

—डा॰ धर्मपाल

(आर्य सन्देश 11-11-90)

जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'मङ्गल' है।

जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'बुध' है।

जो सब जगत् का निवासस्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति-समय में सब रोगों से छुड़ाता है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'केतु' है।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है, और ब्रह्मा से लेके सब मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम 'यज्ञ' है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति : शील और प्रज्ञा के धनी

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति का जीवन और कार्य राष्ट्र की उदीयमान प्रजा के लिए सदैव एक दीपक-स्तम्भ का कार्य करेगा। वे एक आदर्श पत्रकार, तपस्वी देश-सेवक, निःस्वार्थ समाज सुधारक, तेजस्वी साहित्यकार और समर्पित एवं निष्ठावान शिक्षाविद् थे। उन्होंने अपने छात्रकाल में "सादा जीवन और उच्च विचार" के उच्चादर्श की शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुकुल कांगड़ी के वे प्रथम स्नातक थे और वे आजीवन सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श को चरितार्थ करने में जागरुक एवं सन्नद्ध रहें।

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति का जन्म 9 नवम्बर 1889 को जालन्धर में हुआ था। देशभक्ति एवं समाज कल्याण के प्रति समर्पण की भावना उन्हें अपने पिता स्वामी श्रद्धानन्द से विरासत में मिली थी। स्वामी जी में भावुकता और निर्णय बुद्धि का सुभग समन्वय विद्यमान था। उनकी भावुकता उनके बड़े पुत्र हरिशचन्द्र के हिस्से में अवतीर्ण हुई तथा उनकी बुद्धि पं० इन्द्र जी को मिली।

उपनिषद् कालीन ब्राह्मण की तरह पं० जी सदैव ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाया करते थे। नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रायः प्रातःकाल की शान्त, पावन अमृतवेला में ही वे अपने सम्पादकीय, लेख, सार्वजनिक भाषण, विचारपूर्ण निबन्ध और अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी टिप्पणियां तैयार करते थे। प्राची में प्रकाश की किरणें फूटने पर प्रकृति की गोद में विचरण उन्हें प्रिय था।

बचपन में एक साँघातिक रोग के कारण उनका एक फेफड़ा बेकार हो गया था। नियमित खानपान और औषधि-सेवन आदि के विषय में वे कठोर रूप से नियमित और संयत थे। इस पथ्य सेवन और नियमित दिनचर्या के कारण ही वे अन्त तक कार्यक्षम बने रहे।

उनके इतिहास ग्रंथों, निबन्धों, सम्पादकीय लेखों, महापुरुषों के जीवन चरित्रों और रेखाचित्रों में उनकी प्रतिभा एवं विवेचन शैली का सुचारू रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वे भाषण कला में भी निपुण थे, परन्तु उनके मितभाषी स्वभाव के कारण उनके भाषण शब्दाडम्बर शून्य होते थे। उनकी संक्षिप्तता की यह कला सुसाध्य थी और हृदय तथा मस्तिष्क पर अपना सीधा प्रभाव डालती थी।

इतिहास के ग्रन्थों और महापुरुषों की जीवन कथाओं को पढ़ने का उन्हें बड़ा शौक था। उन्होंने "मुगल साम्राज्य का क्षय और कारण", "स्वतन्त्र भारत की रूप-

रेखा", "भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त", "भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास", आदि कई इतिहास एवं राजनीति पर आधारित ग्रंथ लिखे। उन्होंने कई महापुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी। "नेपौलियन बोनापार्ट की जीवनी", "प्रिन्स बिस्मार्क-जीवन चरित्र", "गैरीबाल्डी—जीवन चरित्र", "महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र", "पं० जवाहर लाल नेहरू-जीवन चरित्र", "सम्राट् रघुवंश जीवन-चरित्र", "कर्मयोगी राष्ट्रपति-संस्मरण", "मेरे पिता-संस्मरण", "लोकमान्य तिलक", आदि उनकी रचनाएं पाठक के मन-मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ती हैं। उनकी एक रचना 'मैं' उनका ऋणी हूं" वास्तव में उस युग के महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व का अनूठा आकलन है। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर आधारित अनेक ग्रथों का प्रणयन किया।

अपनी तरुणाई के दिनों में उन्होंने काव्य रचना भी की थी। 'भारत वन्दना' पर लिखे उनके श्लोकों को पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सराहा था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में महाभारत की शैली में उन्होंने "भारत इतिहास" पर संस्कृत भाषा में एक मनोहर काव्य लिखा। उनका "भारत वन्दना" गीत महात्मा गांधी जी को बहुत प्रिय था और अनेक सभाओं में गांधी जी उनसे यह गीत गाने के लिए कहा करते थे।

हम सभी इस बात से परिचित हैं कि उनकी शिक्षा दीक्षा गुरुकुल के स्वाधीनता और स्वदेश व स्वसंस्कृति के प्रेम से भरे हुए वातावरण में सम्पन्न हुई थी, अत: उनके रक्त में स्वदेश, स्वभाषा व स्वसंस्कृति की भावनाएं सदैव स्पन्दित होती रहती थी। दिल्ली में हिन्दी का वातावरण बनाने वालों में उनका नाम पहली पंक्ति में है।

उन्होंने अपने जीवन काल में कई मासिक, साप्ताहिक एवं दैनिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन एवं संचालन किया था। उस युग में यह कार्य इतना आसान न था। अंग्रेजी सरकार की दोष-अन्वेषिणी कठोर दृष्टि सदैव इन पत्रों पर रहती थी, परन्तु पं० जी का आदर्श था "न दैन्यम् न पलायनम्"। इसी आदर्श-वाक्य को लेकर उन्होंने निर्भीक पत्रकारिता को आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने अन्तिम क्षणों तक राष्ट्र और समाज की चिन्ता की। एक बार उन्होंने कहा था—"मेरे गिरने का तो समय आ गया है, पर मैं चाहता हूं कि मेरा देश न गिरे और इस दिशा में आगे बढ़ने वाले आप लोग न गिरें।" ऐसे बलिपंथियों का उत्सर्ग कभी व्यर्थ नहीं जाएगा। जब तक हम इन्द्र जी जैसे सशक्त पत्रकारों की लेखनी की निर्भीकता और सच्चाई अपनाते रहेंगे, जब तक हम उन उदात्त आदर्शों और लक्ष्यों को स्मरण करके, उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त रहेंगे, तब तक ऐसी विभूतियों का उत्सर्ग व्यर्थ न जाएगा। राष्ट्र-समाज एवं दूसरों के लिए उत्सर्ग कर देने वाले उस दिवगंत महामानव को आज हम उनके 100वें जन्मदिन पर स्मरण कर रहे हैं।

अपने दैनिक पत्र "अर्जुन" की दश वार्षिकी के अवसर पर उन्होंने विश्व-कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर को आमन्त्रित किया। वार्तालाप में उन्होंने कहा भारत ने मुझे तब पहचाना, जब यूरोप ने मेरा जय जयकार किया। पं० जी ने तुरन्त "सद्धर्म प्रचारक" साप्ताहिक पत्र की फाइल निकालकर कवीन्द्र को दिखाई और कहा—"आपको नोबल

पुरस्कार मिलने से पहले ही हमने आपकी प्रतिभा और योग्यता का सम्मान किया था। पंडित जी की ऐसी थी तत्वदर्शिनी प्रज्ञा।

सन् 1912 में गुरुकुल का स्नातक बनने पर उन्होंने व्रत लिता था—'मैं शक्ति भर, स्वधर्म और स्वदेश की सेवा में अपना जीवन लगाऊंगा'। परमात्मा ने उन्हें उज्जवल प्रज्ञा और साहस प्रदान किया। वे प्राध्यापक, पत्रकार, साहित्यकार, समाज सुधारक, स्वाधीनता सेनानी और बाद में सांसद के रूप में आजीवन लोकशिक्षक और लोकसेवक बनकर स्वदेश, स्वधर्म और स्वभाषा की सेवा करते रहे।

पंडित जी का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी था। उनके गृहजीवन की सफलता और चारुता का श्रेय उनकी गृहलक्ष्मी चन्द्रवती जी की योजना शक्ति, व्यवस्था शक्ति और कार्यक्षमता तथा सेवा परायणता को जाता है।

पं० जी ने आजीवन गुरुकुल कांगड़ी की सेवा की। वे यहां पर प्राध्यापक रहे, मुख्याधिष्ठाता रहे और आगे चलकर कुलपति भी। वे गुरुकुल की प्रगति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। उनके नेतृत्व में गुरुकुल ने चहुंमुखी उन्नति की। गुरुकुल में अनेक नए विभाग खुले। पंडित जी ने शिक्षा की दृष्टि से गुरुकुल को अपनी विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हुए, उसे बदलते हुए समय के अनुकूल ढ़ालने का प्रयास किया। गुरुकुल की उपाधियों की सरकारी सेवाओं के लिए, सरकार से स्वीकृत कराया। उसमें विज्ञान, कृषि तथा अभियांत्रिकी जैसे आधुनिक विषयों के पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ कराए। पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक अगस्त 1958 को गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में विज्ञान भवन का उद्‌घाटन करते हुए कहा था—"मुझे अपनी प्राचीन सभ्यता पर गर्व है। यह अच्छी और महान दोनों हैं। यह प्रेरणादायक है। आर्थिक और राजनैतिक तरक्की के लिए जरूरी है कि हम वैज्ञानिक तरीके अपनाएं और अपने काम में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखें। आज की वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी संस्कृति दोनों में मेल होना आवश्यक हैं। यही विचार पं० इन्द्र जी के भी थे। पं० नेहरू के अतिरिक्त गुरुकुल में डा० सम्पूर्णानन्द, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डा० चिन्तामणि देशमुख, लौह पुरुष सरदार पटेल भी आए।

"विजय", "वीरअर्जुन", और "नवराष्ट्र" आदि पत्रों का सम्पादक, दिल्ली कांग्रेस का प्रधान, गुरुकुल कांगड़ी का कुलपति और सार्वदेशिक सभा का समम-समय पर मन्त्री और प्रधान, वह समाज सुधारक महामानव, जीवन का वह ज्योति स्तम्भ 23 अगस्त 1960 को हमें छोड़ गया। वह दीप जो जीवन भर दूसरों को प्रकाश देता रहा, मृत्यु के बाद भी हमारे पथ को आलोकित कर रहा है, हमारे मनोबल को दृढ़ आधार प्रदान कर रहा है। आओ आज हम प्रण करें कि अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक राष्ट्र, देश और धर्म के लिए कार्यरत रहेंगे। "हम उसके आदर्शवाक्य को सदैव स्मरण रखेंगे—अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं न पलायनम्। उस महामानव के प्रति हमारी श्रद्धावनत श्रद्धांजलि।

—डा० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 11-11-90)

मंडल कमीशन बनाम आर्यसमाज कमीशन

देश के राजनीतिज्ञों ने मण्डल कमीशन का जिन भावनाओं से निर्माण किया उनका आर्यसमाज स्वागत करता है। जहां तक मैं समझ पाया हूँ इस कमीशन का निर्माण इस भावना से हुआ होगा क्योंकि सदियों से भारतीय समाज का चलन जन्म के आधार पर चलता रहा—एक वर्ग उच्च-स्थिति में रहा, दूसरा वर्ग निम्न स्थिति में रहा, और यह ऊंच-नीच के भेद जन्म-जन्मान्तर चलते रहे। कुछ सुविधाएं जो एक वर्ग को मिलती रही दूसरा वर्ग उनसे वंचित रहा। अब युग बदला हुआ है। कोई जन्म से अपने को ऊंचा नहीं कह सकता, दूसरे को नीचा नहीं कह सकता—कह नहीं सकता अलग बात है, परन्तु कहता है, और कहता ही नहीं इसी तरह से बरतता भी है—इस जन्म जात जाति भेद के कारण समाज में असन्तोष उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह जन्म गत जाति-भेद कैसे मिटाया जाए, सब मनुष्यों को मानवता के अधिकार समान रूप से कैसे दिए जाएं—इसी आधार पर मण्डल-कमीशन की रचना हुई। इस कमीशन ने यह देखा कि जन्म के कारण समाज का एक वर्ग मानवता के अधिकारों से भी वंचित हैं, और इस वञ्चना से सदा असन्तुष्ट रहता है, इस असन्तोष का मुख्य कारण आर्थिक है, यह राय दी कि इस वर्ग को अन्य वर्गों की अपेक्षा हर क्षेत्र में विशेष सुविधाएं दी जाएं जिसे अंग्रेजी में 'रिजर्वेशन' तथा हिन्दी में 'आरक्षण' कहा जाता है। इस प्रकार का 'आरक्षण' या 'रियायतें' दिया जाना स्वाभाविक था, परन्तु इस प्रकार रियायतें दिए जाने का परिणाम यह हुआ कि समाज का वह वर्ग जो अपनी योग्यता के आधार पर सामाजिक—रचना में अपना स्थान बनाए हुआ था वह असन्तुष्ट हो गया। अब स्थिति यह उत्पन्न हो गई है कि समाज दो वर्गों में बंट गया है—एक वर्ग वह है जो 'योग्यता' को सामाजिक-रचना में मुख्यता देता है। दूसरा वर्ग वह है जो 'जाति' को इसलिए मुख्य स्थान दे रहा है क्योंकि सदियों से और सदियों तक उनके साथ अमानवता का व्यवहार हुआ है, उसके प्रतिशोध में वह हर क्षेत्र में वरीयता या रियायत मांगता है। हमारे देखते-देखते हमारा सम्पूर्ण समाज दो भागों में बंट गया है। समाज के दो भागों में बंट जाने पर मुझे कोई चिन्ता न होती, चिन्ता इस बात की नहीं कि कुछ लोगों को अधिकार मिले, कुछ को नहीं मिले, चिन्ता इस बात की है कि हमारा समाज सदा बंटा रहेगा, अछूत सदा अपने को अछूत कहते रहेंगे, छूत सदा अपने को छूत कहते रहेंगे क्योंकि इन शब्दों के प्रयोग से ही हर व्यक्ति को मानवता के अधिकार मिलने या न मिलने का सम्बन्ध जुड़ा रहेगा।

हम देश की एकता का नारा लगाते हैं, और देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट रहे हैं। मेरा विचार है कि देश को इस भयंकर स्थिति से बचाने के लिए आर्य समाज को मण्डल कमीशन की तरह एक आर्यसमाज-कमीशन बनाना चाहिए। जब देश में राजनीति ने जन्म भी नहीं लिया था, तभी से आर्यसमाज छूत-अछूत की समस्या पर विचार करता रहा है। आर्यसमाज ने ही नारा दिया था कि कोई अछूत नहीं है, अगर है तो 'दलित' शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसे समाज ने दबाया है या जिसे मैंने दबाया है दबाने का दोष मेरा है, समाज का है, जिसे दबाया गया गया है, उसका नहीं। एक समय ऐसा आया था जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने राजनीतिक-जगत् में प्रवेश कर के देश की समस्या को अपने हाथों में लिया था। कुछ देर राजनीति में रहकर उन्होंने अनुभव किया देश की भीतरी समस्या तो छूत-अछूत की है। तभी उन्होंने 'अछूत' शब्द की जगत 'दलित' शब्द का प्रयोग किया क्योंकि 'अछूत' तथा 'दलित'—इन दोनों शब्दों में अर्थगत भेद है, 'अछूतोद्धार'—शब्द का शोर मचाने वालों को भी इस भेद का ज्ञान नहीं। उन्होंने राजनीतिज्ञों की आंखें खोलने के लिए उन्हें समस्या का वास्तविक रूप समझाया, परन्तु अन्धे कहाँ देख सकते, और बहरे कहां सुन सकते। अन्त में, स्वामी श्रद्धानन्द ने राजनीति से अपना हाथ खींच लिया और 'लिबरेटर' नाम का एक पत्र निकालना शुरू किया जिसमें अछूतपन के निवारण पर बल दिया परन्तु इन लोगों के सिर जूं तक नहीं रेंगी।

परमात्मा का कोटि-कोटि धन्यवाद है कि आज देश के सामने वह समस्या अपना उग्ररूप धारण करके उठ खड़ी हुई है जिसे ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द तथा आर्यसमाज देश की वास्तविक समस्या समझते रहे। जब देश के करोड़ों व्यक्तियों को हम मनुष्य ही न समझें तब हमें अपने को मनुष्य कहने का क्या अधिकार है ? मैं इस समस्या के उठने से दुःखी नहीं हूं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जिस समस्या की तरफ आज से सैंकड़ों साल पहले ऋषि दयानन्द ने देश का ध्यान खींचा, जिस समस्या की तरफ स्वामी श्रद्धानन्द ने राजनीतिज्ञों का ध्यान खींचा, जिस समस्या को देश की प्रत्येक आर्यसमाज ढोल-पीट कर बहरों के कान खोलने का यत्न कर रही है, वह समस्या देश के भीतर से ही उपज उठी है। दुःख सिर्फ इसी बात का है कि हमारे राजनीतिज्ञ समस्या की गहराई तक नहीं गए। वे जिस रास्ते पर चल रहे हैं उसी रास्ते पर चलते रहे तो देश जाटों, अहीरों, किसानों आदि की जातों में बंट जाएगा और रोज नव-युवकों का आत्मदाह होगा, रैलियां होंगी, बन्द होंगे और देश का सत्यानाश होगा। तो क्या किया जाय, जन्म की जात-पांत का ? इस भयंकर समस्या का क्या हल है ?

मेरा आर्यसमाज के नेताओं से अनुरोध है कि आर्यसमाज स्वतन्त्र रूप में मण्डल कमीशन की तरह इस समस्या को हल करने के लिए 'आर्यसमाज कमीशन' नाम से एक कमीशन का निर्माण करे, और सारी स्थिति पर विचार कर कमीशन की रिपोर्ट तैयार करें जिसमें देश के उच्च कोटि के विचारक अपने विचारों को मौखिक या लिखित रूप में व्यक्त करें। इस प्रकार की देश-व्यापी रिपोर्ट सार्वदेशिक सभा तैयार कर

सकती है। उसके पास धन-जन सब साधन मौजूद है। आर्यसमाज के सामने यह अमूल्य अवसर उपस्थित हुआ है। इस अवसर को हाथ से खो देना ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द तथा स्वयं आर्यसमाज के साथ अन्याय करना होगा। आर्य बन्धुओं से अनुरोध है कि इसे राजनीति का प्रश्न समझ कर देश का प्रश्न समझें क्योंकि इस समस्या का हल वी० पी० सिंह के पास नहीं है, इस समस्या का हल ऋषि दयानन्द या उसके अनुयायियों के पास है। समस्या का हल यह है कि जात-पात की जड़ें पक्का करने के स्थान पर ये जात-पात को मिटा दिया जाए। यह कैसे हो...इस पर कमीशन विचार करेगा।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 18-11-90)

प्रत्येक कार्य को नियम पूर्वक करना चाहिए। नियमितता से मन को सुख और शान्ति प्राप्त होती है। जिसके जीवन में अनियमितता है वह विद्वान्, बलवान् एवं धनवान् होते हुए भी अपने ध्येय में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम 'होता' है।

जो सबका रक्षक जैसा पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है। इससे उसका नाम 'पिता' है।

जो पिताओं का भी पिता है इससे उस ईश्वर का नाम 'पितामह' है।

जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम 'प्रपितामह' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

चन्द्रशेखर की अग्नि परीक्षा

आज हमारे बुद्धि जीवियों को क्या हो गया है ? वे मूल्यों पर बात करते समय मूल्यों से अधिक मूल्यों के रखवारों की बात करते हैं। उनकी हिमायत करते हैं या उनका विरोध करते हैं। पर ये रखवारे सन्देह के घेरे में आ गए हैं।" यहां तक कि इन्हीं से जुड़कर मूल्य भी सन्दिग्ध हो गए हैं। एक आदमी को बचाने या मारने के लिए मूल्यों की नई-नई अपव्याख्याएं खोजी जाती हैं। हम रोज धर्म निरपेक्षता की बात सुनते हैं। सरकार कहती है। सरकारी मीडिया कहता है। बुद्धि जीवी कहते हैं। पर उनमें से कोई है जो धर्म की मर्यादाओं से दूर जा सकता हो, या वह अपने आपको तटस्थ रख सकता हो। आज भी बड़े से लेकर छोटे तक यहां तक कि गरीब किसान और मजदूर सभी यही कहते हैं कि इसे मेरा धर्म कबूल नही करता। मैं इसे नहीं करूंगा। यहां के तो जर्रे ज़र्रे में 'धर्म' समाया हुआ है।

दूरदर्शन पर रोजाना प्रचार होता है—"स्वदेश और विश्व को जो जोड़ता है, वह धर्म है" यह लोकमान्य तिलक की दी गयी धर्म की परिभाषा है। अब धर्म इतनी वड़ी चीज है तो उससे निरपेक्षता क्यों ? मजहब, मत-मतान्तर सम्प्रदाय आदि से निरपेक्षता नहीं हो सकती। हमारे देश में आज राजनीति से धर्म को अलग किया जा रहा है। जो सबके सांसों में है, उसे अलग कैसे किया जा सकता है ? हमारे देश में राजनीति धर्म का अंग रही है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। सत्य का पक्षधर सदा विजयी हुआ है। असत्य सदा हारा है और यही धर्म है। राजधर्म तो धर्म ही है। धर्म विश्व को मंगलमय दिशा में संचालित करने वाला है। राम का सारा जीवन धर्ममय है। अतः राम इतिहास में उपेक्षणीय हो ही नहीं सकता। राम के चरित्र में उदारता, तितिक्षा, सत्य और करुणा साकार है। वह मनु महाराज के दस धर्म लक्षणों को धारण करने वाला है। धृति, क्षमा, दमः, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध—इनमें क्या कोई ऐसी बात है, जिसका विरोध किसी भी विचार-धारा का व्यक्ति कर सके। वैदिक धर्म सभी उदात्त विचारों को अपने में समेटे हुए हैं। इसी प्रकार अनेक महापुरुषों के जीवन में ये उदात्त-गुण मिलेंगे। इसीलिए वे सब धार्मिक पुरुष हैं ऐसे ही राम भी धर्ममय हैं। रामत्व धार्मिकता का पर्याय है। धार्मिकता विशालता की द्योतक हैं। आज परीक्षा की घड़ी, चन्द्रशेखर की है—

कि क्या वे राम से दूर जा सकेंगे ?

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 25-11-90)

अर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

भारत का जन ्स उत्सव प्रेमी है। किसी भी उत्सव की प्रतीक्षा हम सभी बड़ी उत्सुकता से करते हैं 'मारे पारिवारिक उत्सव हों, अथवा सामाजिक, हम सभी उत्सवों को उत्साह पूर्वक म - हैं। वास्तव में भारतीय जनता उत्सव धर्मी है। अनेक स्थानों पर अनेक मेले होते हैं। नके लिए कोई निमन्त्रण पत्र नहीं भेजता, फिर भी लाखों करोड़ों लोग कुम्भ के अव पर अथवा कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर इकट्ठे हो जाते हैं। ऐसी बात नहीं है कि केवल उत्तर भारत में ही यह धार्मिक मेलों के आयोजनों की परम्परा हो, दक्षिण श्चिम अथवा पूर्व के किसी भी कोने में आप चले जाइए, उत्सव यहाँ पर भी उल्ला वातावरण में ही मनाये जाते हैं। महाराष्ट्र की गणपति पूजा अथवा सुदूर दक्षिण में का विहार—सभी में उल्लास भरा होता है।

दिल्ली में तो आए दिन रैलियों ा आयोजन होता रहता है। वोटक्लब पर सदा ही किसी न किसी राजनैतिक रैली का आयोजन होता रहता है। कभी-कभी सामाजिक संस्थाएं भी गौरक्षा के लिए अथा महंगाई को कम कराने के लिए या अश्लील पोस्टरों पर पाबन्दी लगवाने के लिए दर्शन करती हैं।

परन्तु इन सभी से वह उद्देश्य सिद्ध नह होता जिसकी तड़प आदि काल से मनुष्य के मन में रहती आई है। हर मनुष्य चाहत है कि वह मनुष्य बने। वह मानव मात्र का, प्राणीमात्र का हित चाहने वाला मनुष्य बने वह वेद का आदेश मानने वाला 'मनुर्भव' जैसा मनुष्य बने। इस दिशा में आर्यसमाज प्रत्नशील है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वाधान में 23-24-25-26 दिसम्बर, 1990 को दिल्ली के रामलीला मैदान में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया गया है। निश्चय ही यह समारोह आर्यसमाज की ओजस्विता एवं ऊर्जा को प्रतिबिंबित करने वाला समारोह होगा। इस अवसर पर देश-विदेश के हजारों नहीं, लाखों प्रतिनिधि दिल्ली में आयेंगे और आर्यसमाज के वर्चस्व को बढ़ाएंगे।

इस महासम्मेलन में अनेक सम्मेलनों—आर्यों का आदि देश, आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम, राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव, शिक्षा संस्कृत एवं संस्कृति, आर्य महिला सम्मेलन आदि का भी आयोजन किया गया है। इस अवसर पर आर्यसमाज के लिए जीवन समर्पित करने वाले विद्वानों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित भी किया जाएगा। सार्वदेशिक सभा की एक महान योजना—महर्षि दयानन्द गौ दुग्ध संवर्धन केन्द्र का शिलान्यास भी इसी समय किया जाना है।

दिल्ली के सभी आर्य भाइयों और बहनों का कर्त्तव्य है कि तन, मन, से इस महान् यज्ञ में सहयोग करें तथा देश विदेश के मेहमानों का हार्दिक आतिथ्य एवं सत्कार करें। उन्हें किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न होने दें। यही आर्य आतिथ्य परम्परा है।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश 2-12-90)

कम खाने, गम खाने और कतर खाने में प्रथम कुछ संयम और कष्ट करना पड़ता है, पर अन्त में सुख और आर्थिक लाभ ही होता है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम 'माता' है।

जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इससे परमेश्वर का नाम 'अज' है।

जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता इसलिए परमेश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है।

जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो उसको आदि कहते हैं। जिसका आदि-करण कोई भी नहीं है इसलिए परमेश्वर का नाम 'अनादि' है।

जो आनदन्दस्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वर का नाम 'आनन्द' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल

आर्यसमाज का इतिहास, उन बलिदानी वीरों की गौरव गाथा का इतिहास है जो देश, जाति और धर्म के लिए हंसते-हंसते फाँसी के फन्दों पर झूल गए। आर्यसमाज के वे वीर सेनानी कभी किसी प्रकार के लोभ-लालच में नही फंसे। वे अंग्रेजों की विचित्र सामनीति के प्रलोभन में कभी नहीं आए। उन्हें हेम-मृग के जन्म की असंभाव्यता सदैव याद रही। विदेशियों की दमनकारी नीति का विरोध करने के लिए आज हमें फिर से सरदार भगतसिंह चाहिए, रामप्रसाद बिस्मिल चाहिए और चन्द्रशेखर आजाद चाहिए। ऐसे वीर हमारे बीच में होंगे तो न पंजाब में आतंकवाद रहेगा और न कश्मीर में हमारी यह दुर्दशा होगी। इन दोनों प्रान्तों में अव्यवस्था एवं अस्थिरता को फैलाने का दुष्चक्र विदेशियों का है। इन्होंने हमारे मुण्डे-मुन्डिया नू बहका लिया है।

रामप्रसाद बिस्मिल का शहीदी दिवस 19 दिसम्बर को है। और इस अवसर पर उस वीर की याद आना स्वाभाविक है। उस वीर सेनानी से हमारे नवयुवकों को, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा लेनी चाहिए। फाँसी की कालकोठरी में बैठे हुए उस वीर सेनानी ने अपनी आत्मकथा लिखी थी। उसमें यह प्रसंग आया है कि जब उनके पिता ने उनको कहा कि "या तो आर्यसमाज छोड़ो या घर छोड़ दो", तो उन्होंने तत्काल घर छोड़ दिया। उन्होंने आर्यसमाज को नहीं छोड़ा। वे निडर, निर्भीक तथा साहसी नवयुवक थे। उनका हवनकुण्ड गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में रखा हुआ है। वे ऐसे यज्ञप्रेमी थे कि फांसी से पूर्व भी उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा के रूप में यज्ञ करने की अनुमति मांगी थी।

उन्होंने कभी किसी बेकसूर पर गोली नहीं चलाई। उनका निशाना तो अंग्रेज थे। 'काकोरी' डकैती काण्ड के अवसर पर भी उन्होंने किसी को कुछ नहीं कहा और चिल्लाकर यही कहा कि हमारा निशाना तो अंग्रेज हैं। देश की आजादी के लिए उन्होंने जो किया, वह सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। वे चाहते थे कि भारत का प्रत्येक नवयुवक उन्हीं की भांति ब्रह्मचर्य का पालन करके बलवान एवं देशभक्त बने। उनका जीवन एक ऐसा प्रकाशस्तंभ है जो भटके हुए नवयुवकों को सदा सही मार्ग दिखलाता रहेगा।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 9-12-90)

राष्ट्रप्रेम की भावना से ओतप्रोत

स्वामी श्रद्धानन्द

भारतीय नवजागरण में स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम नये भारत के निर्माण एवं नव-जागृति का प्रतीक है। यह तो ठीक है कि अंग्रेजों ने उस समय इस आन्दोलन को दबा दिया था परन्तु देशवासियों में उसी समय से एक चिन्गारी जल उठी थी जो यह तीव्र अनुभूति कराती थी कि राजनैतिक स्वतन्त्रता पाने से पहले जागरण की भी आवश्यकता है। हमारे समाज में पनप रहे अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियां, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, स्त्रियों और शूद्रों के साथ पक्षपात, छुआछूत, मूर्तिपूजा, जन्मना जाति विवाह आदि को उखाड़ देना परम आवश्यक है। इसी दिशा में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने रचनात्मक कार्य किया। उन्होंने 1875 में आर्यसमाज की स्थापना करके उन सभी मुद्दों को उठाया जो हमारे समाज को खोखला कर रहे थे। और एक रास्ता दिया जो सत्य पर आधारित है। जो शिवत्व की ओर ले जाता है और जिसके अनुसार आचरण, व्यवहार करने में सुन्दरता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के आधार पर सभी क्षेत्रों में कार्य करने की प्रेरणा दी। वैदिक आधार पर वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया। उन्होंने शूद्रों और स्त्रियों के लिए भी अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। आर्थिक आधार को पुष्ट करने के लिए गौ-कृषि आदि रक्षिणी सभा की स्थापना की। धार्मिक आधार को मजबूत करने के लिए उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल दिया। उनका राजनैतिक चिन्तन स्वराज्य से प्रेरित था। वे हर स्तर पर शासन चाहते थे।

उनके अनुयायियों में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने यह देखा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्वप्न को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा पद्धति ऐसी हो जो वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति पर आधारित हो, जो केवल अंग्रेजी शासन के लिए केवल क्लर्क न पैदा करती हो बल्कि ऐसे युवक पैदा करे जो स्वतंत्र रूप से अपने देश और राष्ट्र के लिए सोच सकें। इसी विचारधारा से प्रभावित होकर स्वामी श्रद्धानन्द ने 1902 में गंगा पार कांगड़ी ग्राम में मुंशी अमनसिंह द्वारा दी गयी अपनी जमीदारी की भूमि पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। यह स्थान घने जंगलों के बीच में था। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं ब्रह्मचारियों के सहयोग से इसे गुरुकुल के रूप में तैयार किया।

आज हम जानते हैं कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से ऐसे महापुरुष निकले

हैं, जिन्होंने राष्ट्र को समुन्नत करने के लिए, अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण कर दिया। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए हिन्दी पत्रकारिता के लिए और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के लिए घोर परिश्रम किया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से निकले हुए ब्रह्मचारियों ने राष्ट्र की आधारभक्ति को सुदृढ़ बनाया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने सर्वप्रथम अपने दोनों पुत्रों पं० हरिश्चन्द्र और पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रविष्ट किया था। बड़े पुत्र हरिश्चन्द्र तो राजा महेन्द्र प्रताप के साथ विदेशों में चले गये थे और वहीं से उन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए कार्य किया। वे वहां से भारत कभी नहीं लौटे। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने भारत के अनेक क्षेत्रों में विशिष्ट सेवा की। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रं में उल्लेखनीय योगदान दिया।

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति को राष्ट्र प्रेम की भावना अपने पिता से विरासत में मिली थी। मन ही मन उन्होंने लोकमान्य तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मान लिया था। वे आर्य समाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। वे वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और सार्वदेशिक सभा के मन्त्री व प्रधान रहे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति और अधिष्ठाता के रूप में इस संस्था की उन्नति के लिए उन्होंने तत्परतापूर्वक प्रयास किया। उनकी साहित्यिक क्षेत्र की उपलब्धियां अभी भी हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्हें दिल्ली में हिन्दी पत्रकारिता का जनक माना जाता है। इस संक्षिप्त सम्पादकीय में उनकी सभी विभिन्नताओं को समेट पाना आसान नहीं। आने वाले पृष्ठों में अनेक विद्वानों ने पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समुचित प्रकाश डाला है। उनके सुपुत्र पं० जयन्त वाचस्पति पालिता, पुत्री डॉ० ऊषा पुरी वाचस्पति, उनकी पुत्री पुष्पा विद्यालंकृता तथा उनके सहयोगी पड़ोसी श्री फूलचन्द्र जैन के लेख इस अंक में संकलित किये गये हैं। यह लेख उनके अन्तरंग की झांकी हैं। प्रो० शेरसिंह, डॉ० धर्मपाल, प्रो० वेदव्रत वेदालंकार, प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, पद्मश्री चिरंजीत, पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने भी उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये हैं।

यह अब सुनिश्चित हो चुका है कि आर्य समाज के महान नेता तथा गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के जनक थे। उन्होंने सन् 1912 में उर्दू के गढ़ दिल्ली में 'विजय' नाम के प्रथम राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन आरम्भ किया था। वही पत्र बाद में दिल्ली के पहले हिन्दी दैनिक के रूप में प्रकाशित होने लगा था। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति के कारण जब 'विजय' बन्द हुआ तो पं० इन्द्र ने कालान्तर में 'अर्जुन', दैनिक वीर अर्जुन, साप्ताहिक वीर अर्जुन, 'मासिक मनोरंजन' आदि अनेक हिन्दी पत्रों का दिल्ली में सम्पादन, प्रकाशन और संचालन किया। दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के जनक ही नहीं, राष्ट्रीय पत्रकारिता के भी पुरोधा थे। पत्रकारिता के साथ-साथ पं० इन्द्र ने आर्य समाज के अग्रणी नेता, गुरुकुल कांगड़ी के उन्नायक,

शिक्षा-शास्त्री, स्वतन्त्रता सेनानी, उपन्यासकार तथा इतिहासकार के रूप में भी अपार ख्याति अर्जित की थी। गत वर्ष दिल्ली हिन्दी अकादमी ने उनकी जन्म शताब्दी मनाई थी। इस वर्ष, गत 7 नवम्बर, 1990 को दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान डॉ० धर्मपाल के सत्प्रयास से दिल्ली दूरदर्शन द्वारा पं० इन्द्र की जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित परिचर्या का विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया गया, जिसमें डॉ० धर्मपाल के अलावा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक और पत्रकार पं० क्षितिश वेदालंकार ने भाग लिया। ज्ञातव्य है कि डॉ० धर्मपाल दिल्ली प्रदेश के हिन्दी साहित्य के इतिहास की योजना के अन्तर्गत पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विशेष रूप से उजागर करने का विचार रखते हैं।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से 9 नवम्बर, 1989 को पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की जन्म शताब्दी मनाई गयी जिसमें स्वामी आनन्दबोध सरस्वती, पं० वन्देमातरम् रामचन्द्र राव, प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, पं० क्षितीशकुमार वेदालंकार पं० नरेन्द्र विद्यावाचस्पति, डॉ० ऊषा पुरी विद्यावाचस्पति, श्रीमती सुशीला विद्यालंकृता आदि ने उन्हें अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी, इसी दिन पं० क्षितीश वेदालंकार को निर्भीक पत्रकारिता के लिए सम्मानित भी किया गया था। दूरदर्शन पर डॉ० धर्मपाल का पण्डित जी के सम्बन्ध में एक वृत्त कार्यक्रम भी प्रसारित हुआ था। इसी शृंखला में 13 मार्च, 1990 को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में 'पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति जन्म शताब्दी व्याख्यानमाला' का आयोजन किया गया था। इसमें प्रो० विजयेन्द्र स्नातक ने अपना पुस्तक रूप में प्रकाशित लेख पढ़ा था। आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, आचार्य रामनाथ वेदालंकार, डॉ० धर्मपाल, प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार और डॉ० विष्णुदत्त राकेश ने भी पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाले आलेख प्रस्तुत किए।

हमारा प्रयास रहा है कि पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के बहुआयामी व्यक्तित्व को इस विशेषांक में पाठकों के लिए प्रस्तुत करें। वर्ष के प्रारम्भ में हमने घोषणा की थी कि इस वर्ष हम आर्य सन्देश के पाठकों को कम से कम आठ विशेषांक अवश्य देंगे। हमें इस बात की घोषणा करते हुए प्रसन्नता है कि हमने अपने व्रत को पूरा कर लिया है। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० शिवकुमार शास्त्री, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी पर हमने विशेषांक प्रकाशित किये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य आर्य पर्वों के अवसर पर भी विशेषांक प्रकाशित किए हैं। इन विशेषांकों को प्रसारित करना हमारे लिए संभव नहीं था यदि हमें आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान और एम० डी० एच० के मालिक महाशय धर्मपाल का विशेष सहयोग प्राप्त न होता। उन्होंने हमें जो सहयोग दिया है हम उनके बहुत आभारी हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली के अन्य दानी महानुभावों ने भी अपने विज्ञापनों के माध्यम से आर्थिक सहयोग देकर हमारे अनुष्ठान को पूरा करने में सहायता दी है। आर्य समाज के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों, संन्यासियों,

आलोचकों, गवेषकों और साहित्यकारों ने भी हमें अपना विशेष सहयोग दिया है। सभी का नाम लेना तो कठिन होगा परन्तु पं० क्षितीशकुमार वेदालंकार, प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु और प्रो० भवानीलाल भारतीय का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह अर्धशताब्दी अंक को निकालने में हमने पुरानी पत्र-पत्रिकाओं का भी सहयोग लिया है। इस अनुष्ठान को पूरा करने में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान डा० धर्मपाल जी की प्रेरणा मुझे हर समय बलवान बनाती रही है।

सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद के साथ।

—डॉ धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 23-12-90)

शुभ कर्मों की उठी हुई भावना को दबाना सत्य-धर्म की हत्या करना हैं। ज्यों ही शुभ कर्म की भाव उठे उसे कार्य रूप में परिणत कर दे, तभी कल्याण हो सकता है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो सत्य आचार का ग्रहण कराने हारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता इससे परमेश्वर का नाम 'आचार्य' है।

जो सत्य धर्म प्रतिपादक, स- विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इसलिए उस परम. का नाम 'गुरु' है।

जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत. भ. त्, वर्तमान कालों में जिसका बोध न हो उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं।

जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिता- सत्याऽसत्य का जानने हारा है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'चित्' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्य समाज का

घोषणा-पत्र

आर्य समाज की सर्वोच्च संस्था "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा" आर्य शब्द को परिभाषित करते हुए कहती है कि आर्य वह लोग हैं जो किसी विशेष पंथ के अनुयायी न हों, जो जातिवाद को नहीं मानते हों, और जिनका इतिहास, शुद्ध चरित्र, शिष्टाचार और विवेकशीलता से परिपूर्ण हो। यह परिभाषा आर्य समाज के संस्थापक, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य शब्द की व्याख्या पर आधारित है।

14वें अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन के शुभ अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा समस्त विश्व के आर्य समाजियों को आह्वान करती है कि वे आर्य शब्द की इस वास्तविक परिभाषा के अनुसार आचरण के संकल्प को दोहराएं और वास्तव में आर्य कहलाने के अधिकारी बनें।

मातृभूमि की धारणा

आर्य धर्म (वैदिक धर्म) का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण है परन्तु अपने इस दृष्टिकोण के आधार पर आर्य धर्म लोगों की भौगोलिक इकाईयों पर आधारित राष्ट्रीय पहचान की अवहेलना नहीं करता। मातृभूमि की धारणा आर्यों के लिए नई नहीं है। अथर्ववेद के "भूमि सूक्त" में इसकी सजीव व्याख्या की गई है। अथर्व वेद खण्ड 12 मन्त्र 27 के अनुसार जिस पृथ्वी पर हमारे उपकार के लिए फल, फूल पत्र आदि वृक्ष उत्पन्न होते हैं उस भूमि की हम सावधानी सदा करते रहें।

आर्यावर्त (भारत) नामक भौगोलिक इकाई पर आर्य सबसे पहले निवासी थे। राष्ट्र की एकता तथा अन्य विशेषताओं की रक्षा के लिए इन्होंने किसी भी बड़े-से-बड़े बलिदान को महान नहीं समझा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा यह प्रयत्न करेगी कि भारतीय संविधान में संशोधन करके आर्यवर्त को देश के मूल नाम की तरह अनुच्छेद (1) में शामिल किया जाए, तथा आर्यों को 'आक्रमणकारी और आर्यावर्त के मूल निवासी नही हैं' कह कर इतिहास का अशुद्ध वर्णन करना कानून की दृष्टि में एक दण्डनीय अपराध माना जाए।

धर्म चर्चा

धर्म से हमारा अभिप्राय आचार संहिता से है। कुछ लोग इसका अभिप्राय

सर्वोच्च प्राकृतिक सत्ता में विश्वास और एक निश्चित पद्धति के अनुसार उसकी पूजा से लेते हैं। इस प्रकार के लोग अपने धार्मिक विश्वासों को पूर्ण सत्य समझते हैं जिनमें किसी भी कीमत पर परिवर्तन नहीं किया जा सकता। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती धर्म के इस दृष्टिकोण पर समस्त मुख्य धर्म समुदायों के उच्चाधिकारियों में आपसी विचार-विमर्श के इच्छुक थे। सार्वदेशिक सभा उन्हीं प्रयत्नों को पुनः सचेत करना चाहती है। यह सब सत्य है कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार का विचार विनिमय आसान कार्य नहीं हैं, परन्तु सभा की दृष्टि में विश्व को धार्मिक कट्टरतावाद की बुराइयों से बचाने का यही एकमात्र तरीका है। अतः इस दिशा में कार्यरत अन्य विश्वव्यापी संगठनों की सहायता लेकर सार्वदेशिक सभा का यह संकल्प है कि निर्धारित परिणाम प्राप्त करने के लिए अब गम्भीर प्रयत्न किए जाने चाहिएं।

संस्कृति

संस्कृति से हमारा अभिप्राय लोगों की मानसिक शुद्धता से है जो कि उनके व्यवहारों, भाषाओं, परम्परागत रीतियों, विश्वासों और अन्य कार्य कलापों में दृष्टिगोचर होती हैं। संस्कृति शब्द का पर्यायवाची नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वास, संस्कृति के विकास या ह्रास में योगदान अवश्य करते हैं। आर्यावर्त में रहने वाले लोगों की एक विशेष संस्कृति है। नेपाल के वर्तमान संविधान में भी राजा को आर्य संस्कृति का रक्षक कहा गया है जिसके लिए सार्वदेशिक सभा नेपाल के लोगों तथा सरकार को हार्दिक बधाई देती है।

धर्म निरपेक्ष संस्कृति

भारत की संस्कृति को धर्म निरपेक्ष संस्कृति कहा जाता है। भारत के संविधान में सन् 1976 के संविधान संशोधन के फलस्वरूप 'धर्म निरपेक्ष' शब्द भी जोड़ा गया था परन्तु कहीं पर भी इस शब्द को परिभाषित नहीं किया गया। 'धर्म निरपेक्ष' शब्द पर विस्तृत चर्चा करने के हर प्रकार के प्रयत्नों का सार्वदेशिक सभा स्वागत करेगी और इसमें भाग लेकर हर प्रकार का सम्भव योगदान भी दिया जायेगा।

हमारे कुछ राजनीतिक नेताओं की दृष्टि में भी 'धर्म निरपेक्ष' से अभिप्राय धर्म-विरोध से नहीं है, वे इसे सर्व-धर्म सम्भाव की संज्ञा देते हैं जिससे समस्त धार्मिक विश्वासों के लिए समान आदर की भावना पैदा हो।

सैद्धान्तिक रूप से सार्वदेशिक सभा इस दृष्टिकोण का विरोध नहीं करती परन्तु जिस प्रकार से हमारे देश में धर्म निरपेक्षता का पालन किया गया है वह दोहरे माप की प्रक्रिया का सूचक सिद्ध हुआ है।

सार्वदेशिक सभा अपने इस विचार के समर्थन में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 तथा विधि आयोग के पूर्व सदस्य श्री टी० के० टोपे की टिप्पणी का उल्लेख करती है। अनुच्छेद 44 के अनुसार समस्त भारत के नागरिकों को भारत सरकार एक समान

नागरिक संहिता देने के लिए प्रयत्नशील रहेगी। श्री टोपे ने इस बात पर गहरा शोक व्यक्त किया है कि समस्त नागरिकों के लिए समान संहिता देने में भारत सरकार की अरुचि भी इस पर आधारित है कि इस कार्य से उन्हें मुसलमानों का समर्थन चुनावों में नहीं मिलेगा।

मुसलमान लोग अपने इस्लामिक कानून से किसी भी प्रकार हटने का विरोध करते हैं क्योंकि इसमें उन्हें एक ही समय पर चार पत्नियां रखने की अनुमति दी गई है। इस सम्बन्ध में उनकी जिद (कठोर हृदयता), सँविधान की धर्म निरपेक्ष पद्धति का हनन करती है। इन लोगों को अन्य नागरिकों के समान अधिकार एवं कर्त्तव्य देने के लिए हमारे शासक दृढ़ निश्चय लेने में असमर्थ हैं।

तुष्टीकरण नीति

आर्यावर्त के मुख्य समुदाय से भिन्न इस मुस्लिम समुदाय के लिए शासकों की तुष्टीकरण की नीति के कारण ही 1947 में मजहब पर आधारित पाकिस्तान बना। इस पाकिस्तान में से एक अन्य राज्य बंगला देश बना जो कि मजहब पर ही आधारित है।

इस तुष्टीकरण की नीति ने जिस पर आज भी हमारे शासक चल रहे हैं, एक बार फिर उसी प्रकार के हालात बना दिये हैं, जैसे कि इस विभाजन से पहले थे। वही पाकिस्तान आज हमारे देश के अन्तिरिक सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों को सुलगा रहा है। इसके विपरीत हमारे शासकों को पाकिस्तान के विरुद्ध बयानबाजी या आरोप लगाने से ही सन्तोष हो जाता है। सार्वदेशिक सभा का सुझाव है कि सीधी प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही से ही इस संकट का निवारण होगा।

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने वोट बेंक बनाने की आकुलता में मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करके देश को गृह युद्ध के कगार पर खड़ा कर दिया है। हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि हमारे समाज में हिंसात्मक प्रवृत्तियां राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के समय में सर्वाधिक थी और पुनः प्रारम्भ नहीं होंगी, क्योंकि वर्तमान सरकार ने भी अभी देश को इस संकट से उबारने के लिए कोई ठोस निर्णय नहीं लिए।

राष्ट्रवाद

वर्तमान परिस्थितियों से जूझने के लिए देश को योग्य, ईमानदार तथा उत्तरदायी नेतृत्व की आवश्यकता है। सार्वदेशिक सभा यह महसूस करती है कि द्विराष्ट्रवाद की धारणा ही इस वर्तमान संकट के लिए जिम्मेदार है। अनेकता से भरे राष्ट्र में इस प्रकार के संकट शीघ्र पैदा हो जाते हैं। इसलिए हम समान संस्कृति पर आधारित राष्ट्रवाद को विकसित करने पर बल देते हैं।

श्री राम जन्मभूमि

यदि इस प्रकार के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पूर्ण विकास आज तक कर लिया गया होता तो राम जन्मभूमि का विवाद इस खतरनाक अवस्था तक न पहुंचता।

ऐसा प्रतीत होता है कि आज के मुल्ला-मौलवी राष्ट्रीय अपमान की उस घड़ी को यादगार बनाना चाहते हैं जब विदेशी आक्रान्ताओं ने इस देश को लूट कर खा जाने के हर प्रकार से प्रयत्न किए।

सार्वदेशिक सभा इस देश के किसी भी वर्ग के लोगों की सामुदायिक भावना को ठेस पहुंचाना नहीं चाहती परन्तु राष्ट्रीय सम्मान को किसी भी कीमत पर खोना पसन्द नहीं करेगी।

मुस्लिम तथा ईसाई सम्प्रदाय के लोग अपने को अल्पसंख्यक मानते हैं और संविधान उन्हें कुछ विशेषाधिकार देता है, परन्तु अल्पसंख्यक शब्द को वह कहीं भी परिभाषित नहीं करता और न ही कोई प्रतिशत संख्या निर्धारित की गई है जिससे कम रहने पर एक समुदाय के लोगों को अल्पसंख्यक माना जाए।

साधारणत: आधे से कम संख्या वाले समूह को अल्पसंख्यक घोषित करके हमारे संविधान ने विभाजन का कदम उठाया है अत: इस प्रकार के प्रावधानों को जितनी जल्दी हटा दिया जाए, इस देश की एकता के लिए उतना ही अच्छा होगा।

सार्वदेशिक सभा शिक्षा प्रणाली में भी कुछ परिवर्तन करवाने के लिए प्रयत्न-शील रहेगी जिससे इस प्रकार की जागृति जनता में पैदा की जा सके कि सभी हिन्दू (आर्य) चाहे वह सभी हिन्दू हैं या मुसलमान और ईसाई धर्मों में जा चुके हैं— सांस्कृतिक एवं वंश परम्परागत रूप में एक हैं। सभा इस बात के लिए भी सरकार पर दबाव डालेगी कि भारतीय संविधान के वे सभी अनुच्छेद जो नागरिकों को धार्मिक समूह, क्षेत्रियता, जाति और भाषा के आधार पर बांटते हैं, उन्हें तुरन्त संविधान में संशोधन करके हटाया जाए।

समाज के पुन नर्माण के लिए सामाजिक व्यवस्था

वर्तमान परिस्थितियों का गहरा अध्ययन करने के फलस्वरूप सार्वदेशिक सभा आर्यसमाज को इस प्रकार पुनर्गठित करना चाहती है जिससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से जुड़े धार्मिक रूप से स्वतन्त्र तथा शोषण रहित समाज के पुनर्निर्माण के लिए प्रयत्न तेज किये जा सकें, जिससे सबको रोजगार उपलब्ध हो, प्राकृतिक संसाधनों का उच्चतम उपयोग सम्भव हो और समाज के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ समस्त विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए जाएं।

वेदों में वर्णित वर्णाश्रम पद्धति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को इसके प्राचीन शुद्ध रूप में लागू करने से ही इन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए एक ऐसी कानून पालक प्रक्रिया की भी आवश्यकता है, जो इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की रक्षा के साथ-साथ मनुष्यों में बढ़ती पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण और उनके सामूहिक विकास के लिए जिम्मेदार हो।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अनुच्छेद 38 में एक ऐसी ही सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की है जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की

स्थापना और संरक्षण के द्वारा लोक कल्याण का नैतिक दायित्व सरकार पर डाला गया है।

सार्वदेशिक सभा यह स्पष्ट कहना चाहती है कि इस अनुच्छेद के पीछे वर्णाश्रम पद्धति की ही भावनाएं हैं, इसलिए सरकार को अपने नैतिक दायित्वों का पालन करने के लिये अविलम्ब इस पद्धति का शुद्ध प्रचार एवं प्रसार करके इसे राष्ट्रीय प्रणाली बनाने के लिए प्रयत्न करने चाहिए।

सार्वदेशिक सभा वर्णाश्रम पद्धति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को समस्त मानवता के कल्याण के लिए लागू कराने के विशेष प्रयास करेगी।

सार्वदेशिक सभा प्रजातन्त्र में अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करती है तथा आर्थिक ताकतों और तुष्टीकरण जैसी नीतियों का चुनावों में प्रयोग करने का विरोध करती है। देश का चुनाव तन्त्र हर प्रकार से प्रभावों से मुक्त होना चाहिए।

हम आशा करते है कि 14वें अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर जारी इस घोषणा-पत्र का सरकार सावधानी से अध्ययन करे तथा अपनी नीतियों में उक्त परिवर्तन करके शुद्ध राष्ट्रवादी विचारधारा को प्रोत्साहित करे। राजकार्यों तथा शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी, जिसे हमने एक सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया है तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उचित स्थान दिया जाए।

सीमान्त क्षेत्रों में घुसपैठ बन्द करने और देश के अन्दर राजद्रोही ताकतों को उखाड़ने जैसे तरीकों में ही वर्तमान हिंसा को रोका जा सकता है।

(आर्य सन्देश, 30-12-90)

जो निश्चल अविनाशी है सो 'नित्य' शब्दवाच्य है।

जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करने वाला है इससे उस ईश्वर का नाम 'शुद्ध' है।

जो सदा सबको जानने हारा है इससे ईश्वर का नाम 'बुद्ध' है।

जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है इसलिए परमात्मा का नाम 'मुक्त' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

दिल्ली के रामलीला मैदान में 23 से 26 दिसम्बर 1990 तक अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का भव्य समारोह हुआ। यह सम्मेलन आशातीत रूप में सफल हुआ। देश विदेश के हजारों-लाखों नर-नारियों, बालकों और वृद्धों ने इस अन्तर्राष्ट्रीय समारोह में भाग लिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित आर्य समाज के मानव मूल्यों पर आधारित सुनिश्चित सिद्धान्त है। इस सम्मेलन में इन सिद्धान्तों की प्रासंगिकता तथा व्यावहारिकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। इस सम्मेलन में आर्यसमाज के संगठन को और अधिक सुदृढ़ करने तथा इसके भावी कार्यक्रम को सुनिश्चित रूप रेखा देने के लिए भी विचार किया गया। इस अवसर पर आर्यसमाज के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किए गए कार्य की समीक्षा भी की गई। सुधी विद्वानों ने कहा कि हमें आत्म निरीक्षण एवं आत्म विश्लेषण करने के पश्चात् आत्म निर्णय की अगली सीढ़ी पर चढ़ना होगा। यह तो निर्भ्रान्त सत्य है कि वेद आदि सृष्टि में परमात्मा द्वारा दिया गया ज्ञान है। वेदों में किसी भी समुदाय के लाभ-हानि की बात प्राप्य नहीं है। यहां तो जड़-चेतन सभी के कल्याण की बातों पर बल दिया गया है। डा० कर्णसिंह स्वनामधन्य विद्वान् हैं। उन्होंने वेद सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि वेदों पर आधारित शिक्षा एवं जीवन-चर्या ही मनुष्य के मार्ग को प्रशस्त कर सकती है। संसार का उपकार कर सकती है। आर्य समाज का सम्पूर्ण चिन्तन इसी भावना पर आधारित है। अतः आर्यसमाज आज भी प्रासंगिक है। महिला सम्मेलन में बालिका वर्ष एवं महिला की अवधारणा पर गम्भीर चिन्तन हुआ। महिलाओं के लिए आर्य समाज द्वारा किए गए कार्य सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। आर्य समाज आगामी पीढ़ियों के कल्याण के लिए भी सतत प्रयत्नशील है। आर्य युवा संगोष्ठी में युवाशक्ति को सही मार्ग पर ले जाने की सम्भावनाओं पर विचार किया गया। इस कार्यक्रम में हमारे प्रवासी भारतीयों ने अपने-अपने स्थानों पर आर्यसमाज द्वारा किए जा रहे कार्यों का विवरण दिया।

दूसरे दिन अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का खुला अधिवेशन स्वामी आनन्द-बोध सरस्वती, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भारतके तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर, पूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी, डॉ० बलराम जाखड़, श्री के० सी० पन्त, श्री एच०के०एल० भगत और स्वामी आनन्दबोध सरस्वती ने अपने विचार व्यक्त किए। सभी ने आर्यसमाज के स्वस्थ चिन्तन एवं कार्य पद्धति की प्रशंसा की। सार्वदेशिक सभा के वरिष्ठ उपप्रधान

पं० वन्देमातरम् रामचन्द्रराव ने आर्य समाज का घोषणापत्र प्रस्तुत किया। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री वीरेन्द्र, हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान प्रो० शेर सिंह, उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पं० इन्द्र राज तथा वैदिक विद्वान डा० राजगुरु शर्मा ने इसका अनुमोदन किया। सभी प्रान्तीय सभाओं तथा विदेशों के प्रतिनिधियों ने भी अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका का विमोचन किया। दोपहर वाद 'आर्यों का आदि देश' तथा 'आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम', संगोष्ठियां हुई। रात्रि में 'वेद की सार्वभौमिकता' विषय पर सामयिक व्याख्यान हुए।

तीसरे दिन 'स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस' के अवसर पर विशाल शोभा यात्रा निकाली गई। लालकिला मैदान में श्रद्धांजलि सभा हुई। रात्रि में आर्य कवि सम्मेलन हुआ। चौथे दिन 'शिक्षा एवं संस्कृति सम्मेलन' तथा व्यायाम प्रदर्शन के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। इस सम्मेलन में प्रतिदिन प्रातःकाल योग प्रशिक्षण शिविर एवं वृहद् यज्ञ के आयोजन हुए।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पूज्य श्री स्वामी आनन्दवोध सरस्वती और महामन्त्री डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री का इस महान आयोजन के लिए समस्त आर्य जगत् की ओर से हार्दिक अभिनन्दन!

—डॉ० धर्मपाल
आर्य सन्देश 6-1-91

जो संसार का अधिष्ठाता है इससे उस ईश्वर का नाम 'विश्वेश्वर' है।

जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम 'कूटस्थ' है।

जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'शक्ति' है।

जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं उस परमात्मा का नाम 'श्री' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज-युगसन्दर्भ

आर्यसमाज कोई नया मत, सम्प्रदाय अथवा धर्म नहीं है। आर्यसमाज एक आंदोलन है। आर्यसमाज के संस्थापक, युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट कहा था कि—'मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना का मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी उद्देश्य नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।' ऋषिवर ने प्राचीन वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति सभ्यता और परम्परा की पुनः स्थापना की है। समय के सुदीर्घ अन्तराल में सत्य सनातन वैदिक धर्म और उसके अनुयायियों में जो अवैदिक बातें, सामाजिक कुरीतियां तथा अन्धविश्वास आ गए थे, उनको दूर करने तथा शुद्ध वैदिक धर्म को जन साधारण के सम्मुख रखने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की थी।

आर्यसमाज मनुष्य मात्र के, अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की कामना करता है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्यसमाज चाहता है कि व्यक्ति और समष्टि के शरीर, आत्मा और मन सब स्वस्थ हों। इसीलिए आर्यसमाज ने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में सुधार करने का प्रयास किया।

आर्यसमाज की आधार शिला वेद है। आर्यसमाज जन्मना जाति में विश्वास नहीं करता। आर्यसमाज वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का पक्षधर है। इसी व्यवस्था के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में सम्यक् सन्तुलन रह सकता है। वर्तमान वर्ग संघर्ष का भी यही एक मात्र समाधान है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जन्म के आधार पर जाति मानने का विरोध किया था। इसी विचारधारा को आगे चलकर अन्य महापुरुषों तथा राष्ट्र नियामकों ने भी अपनाया। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास उन चार आश्रमों की व्यवस्था भी जीवन में सम्यक् सन्तुलन स्थापित करती है। आज मण्डल कमीशन के विरोध में जो जातीय संघर्ष उभर कर आया है, उसका एकमात्र समाधान वर्णाश्रम व्यवस्था है जिसमें दलितों असहायों के लिए समुचित संरक्षण देने का प्रावधान है।

आर्यसमाज राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का पोषक है। विघटनकारी एवं आतंकवादी शक्तियों के विरुद्ध सशक्त कार्यवाही का पक्षधर है। वेद का भी यही आदेश है कि जो तेरे असहाय लोगों की हत्या करते हैं, उसे तू शीशे से बींध दे। शीशे से तात्पर्य गोलियों से है। पंजाब एवं काश्मीर का एकमात्र समाधान पांच मील चौड़ी

सुरक्षा पट्टी का निर्माण है, जिस पर भूतपूर्व सैनिक परिवार बसाए जाएँ और उन्हें आधुनिकतम सुरक्षा साधन भी उपलब्ध कराए जाएं। देश के किसी भी कोने से जो अलगाववाद की आवाज आती है, उसका कारण धर्मान्तरण है। धर्मान्तरण से सामाजिक एवं राजनैतिक समीकरण बिगड़ जाते हैं और इससे राष्ट्रीय अखण्डता को चोट पहुंचती है। आर्यसमाज इसीलिए धर्मान्तरण को रोकने तथा शुद्धि में विश्वास करता है। आर्य-समाज का सर्वोपरि लक्ष्य राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता तथा सभी का कल्याण है।

आर्यसमाज साम्प्रदायिकता का सबल विरोध करता है। आर्यसमाज एक आस्तिक संस्था है। आर्यसमाज ईश्वर को सम्पूर्ण जगत का मूल, सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार सर्वज्ञ, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान मानता है। आर्यसमाज धर्म का आदर करता है तथा सभी को धार्मिक होने की प्रेरणा देता है। रामजन्म भूमि और बावरी मस्जिद के विषय में आर्यसमाज आपसी सद्भाव का पक्षधर है। आर्यसमाज रामजन्म भूमि को संरक्षण दिए जाने के पक्ष में हैं। राम भारतीय धार्मिक आस्था एवं अस्मिता के प्रतीक महापुरुष हैं। आर्यसमाज का धर्म मन्दिरों तक सीमित नहीं है। आर्यसमाज मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दशा में धर्म का पालन करना चाहिए। सत्य का पालन उच्च आचरण का आधार है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

आर्यसमाज स्त्रियों एवं शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार देता है तथा स्त्री जाति को समानाधिकार देने, उन्हें शिक्षा देने तथा जीवन यात्रा में सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बनाने का पक्षधर है। आर्यसमाज दलितों निर्धनों एवं असहायों तथा शूद्रों-हरिजनों को भी समान सुविधाएं तथा योग्यता अर्जित करने के लिए विशेष सुविधाएं देना चाहता है।

राजनैतिक क्षेत्र में आर्यसमाज 'स्वराज्य' का पक्षधर है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा था—'कोई कितना भी करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' महर्षि दयानन्द के चिन्तन में स्थानीय स्वशासन, प्रान्तीय स्वशासन, केन्द्रीय गणराज्य तथा सार्वभौम राज्य की अवधारणा के बीच-विन्दु विद्यमान है। आर्यसमाज धर्म, सभ्यता, संस्कृति, भाषा की एकता में विश्वास करता है। वह स्वभाषा, स्वराज्य, स्वभूषा, का पक्षधर है।

आर्यसमाज पाश्चात्य चकाचौंध से दूर भारतीय संस्कृति की अवधारणा में विश्वास करता है। आर्यसमाज ने उन सभी कार्यों की नींव डाली जो भारत को सुदृढ़ एवं समृद्ध राष्ट्र बना सकते हैं। आर्यसमाज के ही कार्य को आगे चलकर महात्मा गांधी ने आगे बढ़ाया था।

आर्यसमाज के प्रमुखतम कार्यक्रम निम्न हैं—एक परमात्मा की पूजा, वेदों की पुनः प्रतिष्ठा, वेदों की अपौरूषेयता, जन्मना जाति का विरोध और वर्णाश्रम व्यवस्था, समाज सेवा, स्वशासन, दलितोद्धार, नारी शिक्षा, देशभक्ति का प्रचार-प्रसार, मनुष्य के निजी और समष्टिगत गुणों का विकास।

आर्यसमाज गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली का पक्षधर है। इसमें वर्तमान एवं वैदिक मानविकी, वैज्ञानिक, अभियान्त्रिकी तथा आरोग्य शिक्षाएं भी सम्मिलित हैं।

आर्यसमाज संस्कृत, हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के विकास के लिए प्रयत्न-शील हो, अंग्रेजी की दासता को छोड़कर हिन्दी को राजकाज तथा व्यवहार की भाषा के रूप में अपनाना चाहता है। आर्यसमाज सतीप्रथा, भ्रूण हत्या, बालविवाह आदि का विरोधी तथा अन्तर्जातीय विवाह का समर्थक है। आर्यसमाज दूरदर्शन तथा फिल्मों द्वारा संस्कृति प्रसार के नाम पर अश्लीलता का घोर विरोध करता है। आर्य-समाज ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के परिपालन को वरीयता देते हुए नैतिकता के विकास पर बल देता है। आर्यसमाज गौरक्षा का हिमायती है। आर्यसमाज खानपान में शुद्धता पर बल देता है। आर्यसमाज शाकाहार का समर्थन तथा मांसाहार का विरोध करता है आर्यसमाज हर प्रकार के नशे-मद्यपान, धूम्रपान, चरस, गांजा, अफीम, स्मैक आदि का विरोध करता है।

आर्यसमाज एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का पक्षधर है जिसमें कोई भी केवल अपनी उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहता है बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझता है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर आर्यसमाज घोषणा करता है कि उपर्युक्त मन्तव्यों के प्रचार-प्रसार के लिए, वह सदैव देश-विदेश में प्रयत्नशील रहेगा।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 6-1-91)

जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिए परमेश्वर का नाम 'निराकार' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

लोहड़ी और मकर संक्रान्ति

भारतीय विक्रमी अथवा शक संवत्सर और ईस्वी वर्ष में यही समानता है कि प्रति वर्ष लोहड़ी और मकर संक्रान्ति की तिथियां अपरिवर्तित रहती हैं। इसका स्पष्ट कारण है कि संवत्सरों की गणना में सूर्य की गति का अपना विशिष्ट महत्व है।

ये दोनों पर्व उत्तर भारत में विशेष उल्लास से मनाए जाते हैं। इन पर्वों का अपना विशिष्ट महत्व भी है। इन पर्वों पर विशेष प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। पर्वों का उद्देश्य आत्मनिरीक्षण, आत्मालोचन तथा आत्मोत्थान होता है। क्या इस उद्देश्य को वैयक्तिक जीवन तक ही सीमित करें। नहीं, पर्व का तो आयोजन ही सामाजिकता के लिए होता है। अतः ये पर्व सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी अपना महत्व रखते हैं? पर्व का अर्थ ही है कि पवित्रता और पूर्ति की ओर ले जाने वाला।

आर्य पर्व पद्धति में मकर संक्रान्ति की महत्ता तथा आयोजन विधि विस्तार से समझाई गई है। यहां उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। हां, यह कहना आवश्यक है कि आर्यसमाजी केवल अपने को यज्ञ तक सीमित न रखें, बल्कि जो पक्वान्न आदि की व्यवस्था है, उसे भी अपनाएं। पक्वान्न की परम्परा को पौराणिकता बताकर समाप्त न करें। अच्छे पकवान खाने में पौराणिकता कहां से आ गई। वयस प्राप्त व्यक्ति तो शास्त्रीय बातों को, वेद मन्त्रों को, उनकी उपयोगिता को समझ सकते हैं। पर अल्पमति बालक तो इस बात की महत्ता को तभी समझेंगे और तभी याद रखेंगे जब उन्हें इसमें कुछ नवीनतम लगे। मुझे स्मरण है कि दिल्ली में बालक स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस को इसलिए याद रखते हैं कि पूरे मार्ग में उन्हें प्रसाद, फल, मिष्ठान्न आदि मिलते हैं और वे लालकिला मैदान में बैठकर सामूहिक रूप से भोजन करते हैं। छोटे बच्चों के मन में यह संस्कार पक्का हो जाता है कि वे इस शोभा यात्रा में अवश्य सम्मिलित होते हैं।

पौष-माघ में जब शीत अपनी चरम सीमा पर होती है, तब लोहड़ी मनाई जाती है। इसके पीछे कोई पौराणिक आख्यान भी नहीं है। बस इसे तो इसीलिए मनाया जाता है कि आग सेक सकें, गुड़, तिल व मूंगफली, गजक आदि गर्म वस्तुओं का सेवन कर सकें। हम तो तर्क की तुला पर हर बात को तोलते हैं। हमारी पाठ्यपुस्तकों में लिखा है कि किसान रबी की बुवाई के बाद खाली होता है, इसलिए वह इस त्योहार को मनाता है। चलो यही सही, पर यह निश्चय है कि इसमें भी सामाजिकता और सामूहिकता की भावना जुड़ी है।

संक्रान्ति में एक का विसर्जन होता है और दूसरे का आगमन। जाने वाले के

प्रभाव का ह्रास होता है और आने वाले के प्रभाव का अभ्युदय। मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य की राशि बदलती है। सूर्य उत्तरायण होने लगता है। दिन बढ़ना शुरू हो जाता है। शिशिर की हवाओं में एक ऊष्मा आ जाती है। सूर्य तो हमारे लिए जीवनदायी देवता है जिसके प्रकाश में हम अग्नि-जल और अन्य औषधियां पाते हैं। सूर्य न होता तो हमें निरन्तरता, परिवर्तन व उत्सर्ग और उदात्तता का बोध ही न होता। मकर संक्रान्ति का भारतीय जीवन में विशिष्ट महत्व है। दक्षिण भारत में यह पोंगल के रूप में मनाया जाता है।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम जिस प्रकार मकर संक्रान्ति पर शीत और शीतोष्ण के बीच व्यवहारिक सन्तुलन अपनाते हैं, उसी प्रकार अपने जीवन को भी संतुलित, नियमित और पूर्ण करें।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश 13-1-91)

सत्य, सेवा, सादगी, सन्तोष, सदाचार, स्वाध्याय एवं समानता के 'सप्त सुमन' पूर्ण सुख और शान्ति के देने वाले हैं।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्ट कामना और चक्षु रादि इंद्रियों के विषय के पथ से पृथक् है इससे ईश्वर का नाम 'निरञ्जन' है।

जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम 'गणेश' वा 'गणपति' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

वैदिक शासन व्यवस्था

वेदों में शासन पद्धति का एक बहुत ही विकसित रूप प्राप्त होता है। राजा को पूर्णतः निरंकुश नहीं माना गया। सभाओं व समितियों द्वारा राजा के ऊपर नियन्त्रण होता था। ये सभाएं समितियां प्रजा द्वारा नियन्त्रित थीं। प्रजा इनके अधीन थी। वैदिक साहित्य में राज्य के लिए साम्राज्य शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है।

(ऋग्वेद 1-25-10) वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर पता लगता है कि राजा का चुनाव होता था, 1. सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु (अथर्व० 3-4-1)—हे राजन् ! राष्ट्र की सभी दिशाओं में रहने वाली प्रजाएं राज्य करने के लिए तुम्हारा आवाहन करें, 2. त्वां विशो वणतां राज्याय (अथर्व० 3-4-2)—हे राजन् ! सब प्रजाएं राज्य करने के लिए तुम्हारा चुनाव करें, 3. सर्वा: संगत्व वरीयस्ते अक्रन् (अथर्व० 3-4-7)—सारी प्रजाएं मिलकर हे राजन् तुम्हारा चुनाव करें, 4. त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे (यजु० 27-3)—हे अग्नि जैसे तेजस्वी राजन् ! राष्ट्र के ये सारे ब्राह्मण लोग तुम्हारा चुनाव कर रहे हैं। 5. ये धीवानो, रथकारा: कर्मारा:˙˙ । ये मनीविण: सूता: ग्रामण्यश्च ये (अथर्व० 3-5-6-7)—हे राजन् राष्ट्र के जो धीवर लोग हैं, जो रथकार लोग हैं, जो लोहे का काम करने वाले कारीगर हैं, जो बुद्धि जीवी लोग हैं, जो रथ और गाड़ियां चलाने वाले लोग हैं और जो गांवों के किसान और उनके मुखिया लोग हैं, वे सब तुम्हारे चुनाव के लिए अपना मत दे रहे हैं। वेद में इस प्रकार के अनेक स्थल हैं जहां राजा के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। वैदिक राज्य व्यवस्था प्रजातन्त्र पद्धति को मानती है। वंशानुक्रम एकतन्त्र राजा की पद्धति को स्वीकार नहीं किया गया। यदि राजा वंश परम्परा में भी उत्तराधिकारी बनने योग्य है तो भी महासभा का अनुमोदन आवश्यक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में राज्यधर्म व्यवस्था का विशद विवरण दिया है। यद्यपि यह विवरण संक्षिप्त है, परन्तु उन्होंने कुछ ग्रन्थों—ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, महाभारत, नीति का नाम गिनाया है तथा तदनुसार राज-काज चलाने की व्यवस्था दी है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने पर तो सम्पूर्ण राजतन्त्र का सुन्दर चित्र सामने आ जाता है।

राजा को राज्य कार्य में सहायता देने के लिए दो सभाओं का विधान है—सभा और समिति। ये दोनों सभाएं राज्य के लिए कानून और व्यवस्थाएं बनाएंगी। राजा को तदनुरूप ही शासन करना होगा। राजा मनमानी नहीं कर सकता। पथभ्रष्ट

राजा को पदच्युत भी किया जा सकता है। राजा का कार्य वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन कराना भी है।

ऐतरेय ब्राह्मण में अनेक संविधानों का वर्णन मिलता है—साम्राज्य भोज्य, स्वराज्य, वैराग्य, राज्य, पारमेष्ट्य, महाराज्य, आधिपत्य आदि। इनका विस्तार से अध्ययन आवश्यक है। राजा के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का सम्यक् विवेचन ऋग्वेद के वरुण और इन्द्र सूक्तों में किया गया है। वरुण को आदर्श राजा और घरेलू नीतियों का आदर्श माना जा सकता है और इन्द्र को वैदेशिक नीतियों का। वेदों में राज्य के विकास के लिए यज्ञादि धार्मिक कृत्यों का भी विधान है। राजसूय, वाजपेय, अश्वमेघ, सर्वमेघ आदि यज्ञों द्वारा राजा अपनी वीरता, त्याग व तपस्या का परिचय देता है। तभी वह राजा पद का अधिकारी बनता है। चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए तो उसे और अधिक तेजस्विता का परिचय देना होता है।

वेदों में सेनापति तथा सेनाओं के निर्माण चयन तथा उत्तरदायित्वों का भी उल्लेख मिलता है। युद्ध के लिए अस्त्रशस्त्रादि, विमान और पोत का भी उल्लेख है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में राष्ट्र की परिकल्पना तथा उसकी सुरक्षा एवं संवर्धन का वर्णन मिलता है। समस्त विश्व का मानव समाज एकसूत्र में बंधकर रहे। इसे उच्च आदर्श माना गया है। यही इस शासन व्यवस्था की प्रासंगिकता है।

समर्पण शोध संस्थान गुरुकुल, प्रभात आश्रम मेरठ में इस विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी 13 जनवरी, 1991 को हुई। इस गोष्ठी में अनेक विश्वविद्यालयों से पधारे विद्वानों ने अपने शोध-पत्र पढ़े। पूज्य श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने समय-समय पर ऐसी गोष्ठियों की परम्परा डालकर सुधी विद्वानों में वैदिक विचार धाराओं का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति को जन्म देकर एक सराहनीय कार्य किया है। निर्देशक डा० निरूपण विद्यालंकार प्रतिवर्ष यह आयोजन करते हैं। हमें अन्य संस्थानों में भी ऐसी राष्ट्रीय गोष्ठियां आयोजित करनी चाहिए।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 20-1-91)

आदर्श गणतन्त्र

वैदिक संहिताओं में अध्यात्म, नैतिकता, समाजशास्त्र, मानववाद के साथ-साथ राजव्यवस्था के भी सुव्यवस्थिल सूत्र प्राप्त होते हैं। गणतन्त्र के अधिपति का ऋग्वेद में निम्नलिखित शब्दों में आवाहन किया गया है—'तुझ गणतन्त्र के अधिपति का हम आवाहन करते हैं। तू मेधावियों में अतिशय मेधावी है। तू ज्येष्ठ राजा हैं। तू ब्राह्मणास्पति है। तू हमारे आवाहन को सुनकर अपनी रक्षाओं के साथ राष्ट्र सदन में आकर बैठे। (ऋ० 2-23-1) वैदिक राजा या प्रधानमन्त्री स्वतन्त्र नहीं हैं। वह सभा और समिति के अधीन हैं। आधुनिक परिभाषा में ये लोकसभा एवं राज्यसभा हैं।

वेदों में सेना और युद्ध का सम्यक चित्र उपलब्ध हैं। हमारा राष्ट्र कभी शत्रु से पराजित न हो, इस विषय की प्रार्थनाएं और उद्बोधन गीत वेदों में अनेक स्थानों पर मिलते हैं—हमारे राष्ट्र का अधिनायक सदा विजयी रहे, कभी पराजित न हो। राजाओं में अधिराज होकर शोभा पाए। वह कार्यकुशल, प्रशंसनीय, वन्दनीय तथा प्रजा की पहुंच में रहने वाला हो। (अथर्व० 6-98-1)

प्रयास ऐसा होना चाहिए कि युद्ध कभी उपस्थित ही न हो। सभी राष्ट्रों में पारस्परिक सद्भावना रहे। युद्धों में पुरुष और जगत का संहार होता है। इसे रोकने की इच्छा करते हुए वेद में कहा गया है—'मा हिंसीः पुरुषं जगत' (यजुर्वेद 16-21), किन्तु यदि विवशता में युद्ध करना पड़े तो फिर युद्ध के रोमांचक चित्र भी वेद प्रस्तुत करता है। सैनिकों को उद्बोधन देता हुआ वेद कहता है—आगे बढ़ आक्रमण कर, शत्रुओं को परास्त कर। (ऋ० 1-80-3-12)

वेदों में ब्राह्म और क्षात्र के समन्वय पर जोर दिया गया है। 'जिस राष्ट्र में ये दोनों बल परस्पर समन्वय के साथ विद्यमान हैं, वह राष्ट्र पुण्यशाली हैं'—(यजु० 20-25) अथर्ववेद का भूमिसूक्त राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रसमृद्धि और राष्ट्रगौरव का अमर गीत है। राष्ट्रीय प्रार्थना राष्ट्र का एक अति सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती है—हे ब्रह्मन्, हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों। सूर शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, शत्रु वेद्धा, महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों। दुधारू गौएं हों। शीघ्रगामी घोड़े हों। गृह कार्य-कुशल बुद्धिमती नारियां हों। विजयशील रथारोही, सभ्य युवा पुत्र हों। इच्छानुसार बादल बरसें औषधियां फलफूलों से लदी रहें। हम सभी का योग-क्षेम होता रहे।" (यजु० 22-22)

हम प्रतिवर्ष 26 जनवरी को गणतन्त्र दिवस समारोह पूर्वक मनाते हैं। इस दिन भारतवर्ष का अपना संविधान लागू हुआ था। हम वास्तव में अपनी शक्ति का

प्रदर्शन करते हैं। और कामना करते हैं कि कोई हमारे गणतन्त्र की ओर आंख उठाकर न देख सके। इस दिन हम सेना की इलैक्ट्रोनिक युद्ध क्षमता, लड़ाकू वायुयानों, टैंकों, युद्ध पोतों तथा अपनी सैनिक टुकड़ियों का प्रदर्शन करते हैं। साथ ही हम भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों की सांस्कृतिक गतिविधियों का भी झांकियों के माध्यम से परिचय देते हैं। वास्तव में यह हमारे उल्लासमय वातावरण का प्रतीक है।

इस वर्ष खाड़ी देशों में युद्ध हो रहा है और भारत अपने विजयोल्लास में डूबा हुआ भी वहां की परिस्थितियों से असंपृक्त नहीं रह सकता। भारतवर्ष का चिन्तन वेदों पर आधारित हैं। जहाँ पारस्परिक सद्भाव, शान्ति और विश्वबन्धुत्व के अनेक सन्देश प्राप्त हैं। भारतवर्ष इस अवसर पर भी विश्व को सह-अस्तित्व का सन्देश देगा, ऐसी हमें आशा है।

परमपिता परमात्मा से हम कामना करते हैं कि सभी को सद्बुद्धि दे और हम युद्धों से दूर रहें।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 27-1-91)

हमारे जीवन में सुख के दिन अधिक होते हैं और दुःख के कम। अधीरतावश हम दुःख के दिनों को याद करके रोते हैं।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिकादि और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्रज्ञ वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्यसमाज एक आन्दोलन

आर्यसमाज एक आन्दोलन है। कुछ आन्दोलन अभीष्ट की प्राप्ति के साथ समाप्त हो जाते हैं, पर जो आन्दोलन सम्पूर्णता की प्राप्ति के उद्देश्य में संलग्न हो, उसकी उपादेयता तथा प्रासंगिकता सदैव बनी रहती है। आर्यसमाज के दस नियम हैं। इन नियमों पर यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो, मनुष्य के जीवन में जो कुछ संभाव्य है, वह सभी कुछ इनमें समाहित है। ऐसे महान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील आर्यसमाज के सामने आज भी सामयिक चुनौतियाँ प्रश्नचिह्न बनी खड़ी हैं।

आज सम्पूर्ण विश्व खाड़ी युद्ध की ओर उत्सुकता की दृष्टि से देख रहा है। कुछ देश राजनैतिकता के वशीभूत इस युद्ध में भाग ले रहे हैं तथा कुछ देश आर्थिक समस्याओं के कारण। यह भी संभव है कि कुछ देश नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए इस युद्ध में भाग ले रहे हों। संयुक्त राष्ट्र संघ की परिकल्पना, विश्व साम्राज्य अथवा चक्रवर्ती साम्राज्य का एक रूप है। संयुक्त राष्ट्र संघ का दायित्व है कि कोई किसी का कुछ न छीने, कोई किसी को न सताए, कोई किसी पर धौंस न जमाए। पर क्या संयुक्त राष्ट्र संघ के पास इतनी शक्ति है कि वह अपने इस रक्षात्मक उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। क्या संयुक्त राष्ट्र संघ किसी शक्तिशाली शक्ति के दबाव में तो कोई निर्णय लेने में अनुशासित नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि मानवता की रक्षार्थ नैतिक मूल्यों को वरीयता दी जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ की इस सम्बन्ध में एक बैठक शीघ्र हो रही है।

भारत गुट निरपेक्ष संघ का सदस्य है और प्रभावी सदस्य है। फिलिस्तीन का नाम भी इस खाड़ी युद्ध में जोड़ा जाने लगा है। अब भारत की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत ने अपना दृष्टिकोण किसी सीमा तक स्पष्ट भी कर दिया है। भारत के वर्तमान और पूर्व विदेश मन्त्रियों की पिछले दिनों बैठक भी हुई। आवश्यकता यह समझने की है कि यह विश्व राजनीतिक आर्य सामाजिक मान्यताओं से, विश्व जनीन मान्यताओं से मानव धर्म की मान्यताओं से कितना प्रभावित होती है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन आयोजित किया गया। वैदिक धर्म की मान्यताओं, आर्य समाज के कार्य-कलापों तथा भविष्य की योजनाओं पर विस्तार से विचार किया गया। राष्ट्रीय समाचार पत्रों तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि प्रेस माध्यमों ने भी इसे विशेष महत्व प्रदान किया। भारत के प्रधान मन्त्री श्री चन्द्रशेखर, श्री राजीव गांधी, श्री हरिकृष्णलाल भगत,

श्री बलराम जाखड़, श्री कृष्णचन्द्र पन्त, श्री माखनलाल फोतेदार, श्री संजय सिंह, श्री रामचन्द्र विकल, श्री राजमंगल पाण्डेय, डा० कर्णसिंह, श्री मदनलाल खुराना आदि राष्ट्रीय नेताओं का इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सम्मिलित होना आर्य समाज के महत्व को दर्शाता है।

आर्य समाज के अनेक कार्यक्रम भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिए हैं। राष्ट्रीय नीतियां आर्य समाज से प्रभावित रही हैं। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की स्थापना, साम्प्रदायिकता संकीर्णता का उन्मूलन, वर्णाश्रम व्यवस्था का जातीय आधार न होना, अपितु कर्म आधार होना तथा विश्व शान्ति आदि विषयों पर आर्य समाज की अपनी विस्तृत एवं व्यापक तथा सर्वहितकारी सोच है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम समय-समय पर सरकार को तथा राष्ट्रीय नेताओं को विभिन्न विषयों पर संगोष्ठियों के द्वारा, जिनमें राष्ट्रीय नेता भी सम्मिलित हों, अपने विचारों से हमें अवगत कराते रहें तथा इनके क्रियान्वयन में अपनी सक्रिय भूमिका भी निभायें।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 17-2-91)

सत्य पर चलना तलवार की धार पर चलना है। परन्तु सत्य-संकल्प में बड़ी शक्ति है। धैर्य पूर्वक सत्य पर दृढ़ रहना चाहिए।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है इससे परमात्मा का नाम 'निर्गुण' है।

जो सबका ज्ञान सर्वमूल पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिए परमेश्वर का नाम 'सगुण' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

पंथिक आदेश

आज पंजाब प्रान्त में प्रशासन का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वहाँ पर लाहौर से जारी पंथिक आदेशों के सहारे सरकार चल रही है। किसी भी सरकारी अधिकारी की सामर्थ्य नहीं है कि वह इन आदेशों का पालन न करे। पिछले दिनों चण्डीगढ़ और जालंधर के सरकारी प्रेस माध्यमों से हिन्दी में समाचारों तथा अन्य कार्यक्रमों का प्रसारण बन्द हो गया और सरकार को उग्रवादियों की माँग के सामने झुकना पड़ा। वहां पर एक आदेश जारी कर दिया गया कि स्कूलों और कालेजों की लड़कियों को सलवार, कमीज और केसरिया दुपट्टा पहनना होगा तथा लड़कों को पगड़ी बाँधनी पड़ेगी। यह सब हो रहा है। अच्छे काम हों तो कोई बुराई नहीं है। परन्तु यदि धौंस दिखा कर किए जाएं तो यह विघटन की प्रवृत्ति का द्योतक है। सोमवार 18 फरवरी, 1991 को दूरदर्शन पर एक कार्यक्रम दिखाया गया कि पंजाब के सीमावर्ती इलाकों के किसान कितने भयभीत हैं। उनकी बहू-बेटियों के साथ बदसलूकी की जाती है। अपने ही गांव में रहने की इजाजत के लिए फिरौती माँगी जाती है। सरकारी दूरदर्शन यह सब दिखा रहा है। इसका इलाज सरकार के पास क्या है? कुछ दिन पहले पंजाब केसरी के सम्पादक श्री विजय कुमार जी ने ये सब बातें बताई थीं। रविवार की सार्वदेशिक सभा की बैठक में श्री वीरेन्द्र जी ने आदेशों को पढ़कर सुनाया। क्या इस तरह देश चल पायेगा। काश्मीर में भी इतनी ही बुरी हालत है। वहां से हिन्दू दूसरे प्रांतों में सुरक्षित स्थानों पर जा रहे हैं। उनकी सारी सम्पत्ति और इज्जत दिन-दहाड़े लुट रही है। सारा प्रशासन ठप्प है। अलगाववाद के नारे लगाये जाते हैं अथवा पाकिस्तान में विलय के नारे लगाए जाते हैं। दिल्ली के ऊपर इस सबका सीधा असर पड़ता है। दिल्लीवासी आर्थिक सहायता दे सकते हैं आंसू पोंछ सकते हैं पर जो लुट गया उसे तो लौटा नहीं सकते। यह सब काम सरकार का है। पर सरकार में हमारे नेताओं को सरकार बनाने और तोड़ने से ही फुरसत नहीं है। आसाम और तमिलनाडू में भी ऐसे ही हालात बन गए हैं।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पूज्य श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती ने सरकार से मांग की है कि पाकिस्तान की सीमा के साथ-साथ एक सुरक्षा पट्टी बनाई जाए, जम्मू और काश्मीर को सेना के हवाले कर दिया जाए तथा सरकार ऐसे सख्त कदम उठाए, जिसमें अलगाववादियों की आंखें खुल जाएं। सरकार तब करेगी, जब उसके ऊपर भी दबाव पड़ेगा। दबाव के लिये आवश्यक है कि हम आर्य समाज के संगठन को दृढ़तर बनाएं। सभी आर्य भाई-बहनों का कर्त्तव्य है कि वे आर्य सिद्धान्तों का पालन करें तथा संगठन को शक्तिशाली बनायें।

—डॉ॰ धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 24-2-91)

हमारे शाश्वत मूल्यों की भाषा संस्कृत

भारतवर्ष में पिछले कई वर्ष से एक वर्ग उभर कर आ रहा है जो राष्ट्रीय गौरव को मिटाने पर तुला हुआ है। पाठकों को स्मरण होगा कि 16 मार्च, 89 को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से एक ज्ञापन तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष डा० बलराम जाखड़ को दिया गया। इस ज्ञापन के माध्यम से सरकार से प्रार्थना की गई थी कि केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अधिकारी निरन्तर संस्कृत की अवहेलना कर रहे हैं, उनको आदेश दिए जाएं कि वे संस्कृत को समाप्त न करें। संस्कृत किसी वर्ग विशेष की भाषा नहीं है। संस्कृत तो सबकी भाषा है। इसका चरित्र सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक है। भाषा शास्त्री जानते हैं कि संस्कृत भारतवर्ष की सभी भाषाओं का स्रोत है। यूरोप की भी अनेक भाषाएं संस्कृत से ही उद्भूत हैं। भाषा शास्त्र में एक विशेष अध्याय भारोपीय भाषाएं नाम से होता है। इससे तात्पर्य स्पष्ट है कि संस्कृत का विश्व के सन्दर्भ में महत्व विशेष है।

यह ज्ञापन दिया गया था और सरकारी पाठ्यक्रम समिति ने उस समय यह निर्णय ले लिया था कि संस्कृत की स्थिति यथा पूर्व बनी रहेगी। कुछ समय पश्चात् पुन: इन सरकारी अधिकारियों के मस्तिष्क में संस्कृत विरोधी कीड़े ने जन्म लिया और फिर से संस्कृत का विरोध होना प्रारम्भ हो गया। संस्कृत प्रेमियों ने उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की और एक बार फिर से यथा स्थिति आदेश मिल गए। वर्ष 1991 से पुन: प्रयास किए जा रहे हैं कि संस्कृत को पाठ्यक्रमों से निकाल दिया जाए।

हमें आश्चर्य होता है कि हमारे राष्ट्रीय नेता जो संस्कृत के महत्व में बोलते हुए नहीं थकते, वे इस सरकारी तंत्र के सामने क्यों असफल हो जाते हैं। जो भारतीय संस्कृति के गौरव को बनाए रखना चाहते हैं। वे संस्कृत को महत्व देते हैं, जो विज्ञान और टेक्नोलॉजी को बढ़ावा देना चाहते हैं वे भी संस्कृत को महत्व देते हैं। क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि कम्प्यूटर के लिए सर्वश्रेष्ठ ग्राह्य भाषा संस्कृत ही है, जो अपनी भाषाओं को समृद्ध करना चाहते हैं वे भी संस्कृत को ही महत्व देते हैं। जब सभी संस्कृत को इतना महत्व देते हैं तो संस्कृत भाषा की इतनी अवमानना क्यों ?

हमारे संविधान में राजभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में लिखा है कि वह अपनी शब्द सम्पदा को संस्कृत से लेकर समृद्ध करेगी।

दिल्ली में शनिवार 23 फरवरी, 1991 को राष्ट्रपति रामास्वामी वेंकटरामन ने लाल बहादुर शास्त्री विद्यापीठ का मानित विश्वविद्यालय के रूप में उद्घाटन किया।

उनके अंग्रेजी भाषण में संस्कृत भाषा के श्लोक, संस्कृत के महत्व को रूपायित कर हैं। उन्होंने शहजादा दारा शिकोह द्वारा उपनिषदों के फारसी अनुवाद का जिक्र किया और बनारस के संस्कृत विद्वानों के सहयोग का भी। राष्ट्रपति ने कहा कि संस्कृत हमारे शाश्वत मूल्यों की भाषा है। जिस प्रकार हिमालय अचल है उसी प्रकार संस्कृत भी। जिस प्रकार हिमालय अनेक नदियों का उद्गम स्थल, उसी प्रकार संस्कृत भी अनेक भाषाओं की जननी है। राष्ट्रीय एकता का स्वप्न भी उन्होंने संस्कृत के माध्यम से देखने का प्रयास किया। अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करने के लिए उन्होंने संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन करने की प्रेरणा दी। राष्ट्रपति जी बधाई के पात्र हैं।

एक और विडम्बना है। शंकराचार्य तो शूद्रों और महिलाओं के लिए वेद और संस्कृत के अध्ययन की अनुमति नहीं देते थे, पर लाल बहादुर शास्त्री विद्यापीठ में महिलाओं ने अनेक शंकराचार्यों और सनातन धर्म के अधिष्ठाताओं की उपस्थिति में वेद गायन किया। यह दयानन्द की जीत है? यह आर्य समाज की जीत है। आइए हम विपरीत परिस्थितियां होते हुए भी संस्कृत के अध्ययन का संकल्प लें।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 3-3-91)

इस पद-यात्रा में मुझे अनुभव हुआ कि आत्म-शुद्धि का सरल मार्ग—निःस्वार्थ सेवा ही है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जैसे पृथ्वी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर निर्गुण और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज की स्थापना

मेरा सादर प्रणाम् हो उस महान गुरू दयानन्द को जिसने भारतवर्ष को अविद्या आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता को जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम्। ये उद्‌गार श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के हैं। उन्होंने महर्षि दयानन्द के कार्यों के विषय में और व्यक्तित्व के विषय में ही नहीं बताया है, बल्कि उन्होंने इसी एक पंक्ति में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के कार्य-कलाप के विषय में भी बता दिया है। भारत वर्ष अज्ञान के अन्धकार में डूबा हुआ था। यहां के लोग अविद्या माया से ग्रस्त तथा आलसी हो गए थे। वे पराधीन थे और उन्हें यह पराधीनता ही अपनी सी लगने लगी थी। पर वह दीवाना ऋषि दयानन्द इस आर्य जाति को जगाने आया था। उसने एक संगठन बनाया और उसका नाम रखा 'आर्यसमाज'। आर्यसमाज से तात्पर्य है, आर्य लोगों का संगठन अर्थात् श्रेष्ठ लोगों का संगठन। श्रेष्ठ वही व्यक्ति कहलाते हैं, जो विश्व को, मानवता को, मानव मूल्यों को समर्पित होते हैं, जो केवल अपने कल्याण तक सीमित नहीं होते, बल्कि सभी के कल्याण की कामना करते हैं, जो सारे विश्व को अपना मानते हैं, जो युग के लिए दीपक होते हैं, जो एक ज्योति जगाते हैं। उस ऋषिवर ने एक स्वप्न देखा था जिसमें सारा विश्व एक सूत्र में बंधा होगा, जहां पर विश्व मैत्री भी एवं विश्वबन्धुत्व होगा, जहाँ पर सबके कल्याण की कामना की जाएगी, जहां पर समीक्षा भी मित्र की आंख से होगी।

उसने स्थापना की आर्यसमाज की। आर्यसमाज में राष्ट्र कल्याण के अनेक कार्यक्रम किए गए। देश की स्वाधीनता प्राप्ति में उल्लेखनीय सहयोग दिया। आर्यसमाज ने वर्णाश्रम व्यवस्था को अपनाया। आर्यसमाज ने स्त्री शिक्षा और दलितोद्धार पर बल दिया। आर्यसमाज ने ऐसी गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था का प्रतिपादन किया जो अमीर-गरीब के लिए समानता का अध्याय पढ़ाने वाली थी।

समय के साथ-साथ समस्याएं बदलती जाती हैं। उसके घटनाक्रम बदल जाते हैं, पर मूल स्वर केवल एक ही होता है। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, मृत्यु-अमृत बस इन्हीं युग्मों का तो संघर्ष है। बुरों की बुराई दूर करके उन्हें अच्छा बनाना, अधर्म को दूर करके, धर्म की स्थापना करना, मृत्यु को दूर करके अमरत्व की ओर ले जाना वह यही तो एक मात्र जीवन का लक्ष्य है। जब-जब संसार में अधर्म बढ़ा, अत्याचार बढ़ा तब-तब आवश्यकता हुई कि धर्म की स्थापना हो। तभी ऐसे संगठन उठे जो सत्य के व

मानवता के प्रतिपादक थे।

आर्यसमाज भी एक ऐसा ही संगठन है। सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों क निवारण तथा सत्य परम्पराओं का निष्पादन, यही तो आर्यसमाज का उद्देश्य रहा है पर इस सबके मूल में है कि व्यक्ति भी अच्छा हो। व्यष्टि-समष्टि दोनों एक-दूसरे पूरक हैं। व्यक्ति को भी मानव बनना है, उसे भी मनुष्य बनना है, उसे इन्सान बन है और जब वह सच्चा मनुष्य बन जाएगा, वह दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करे जैसा कि वह अपने लिए चाहता है, तो समझिये कि संसार के सब दुःख-दारि समाप्त हो गए। मनुष्य एक इकाई है। उसका श्रेष्ठ बनना-बनाना अभीष्ट है। ऐसे लोगों का संगठन आर्यसमाज है।

'आर्यसमाज स्थापना दिवस' के अवसर पर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा मुखपत्र आर्यसन्देश का विशेषांक आर्य जनता को यही सन्देश देने के लिए प्रकाशि किया गया है कि अपने को पहचानें तथा श्रेष्ठ मानव बनें। वे ऐसे मानव बनें सभी के लिए दीपक का कार्य करें व अपने साथ-साथ दूसरों का भी मार्ग प्रशस्त करें

इसी विशेषांक का आधा भाग महर्षि दयानन्द सरस्वती के परमभक्त अनुयाय आर्यसमाज को ऊर्जा प्रदान करने वाले धर्मवीर पं० लेखराम के व्यक्तित्व एवं कृतित को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। पं० लेखराम की जीवनी के माध्यम से ए सन्देश आर्य जनता के लिए है कि वे अपने देश, धर्म और जाति के उत्थान के लि उसी प्रकार कार्य करें जैसा कि महामानव पं० लेखराम ने किया था। पं० लेखराम प विशेषाँक निकालने की प्रेरणा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु ने दी थी। हम उनके आभारी कि उन्होंने हमें समयोचित परामर्श दिया। इस अंक को तैयार करने में पं० मनो कुमार शास्त्री ने विशेष सहयोग प्रदान किया।

किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने में धन की विशेष आवश्यकता हो है। इस गुरुत्तर कार्य में सदा की भाँति श्री महाशय धर्मपालजी स्वत्वाधिकारी एम डी०एच० (प्रा०) लि० ने हमें विशेष सहयोग दिया है। श्री सुरेन्द्रकुमार 'हिन्दी' औ श्री विमल कान्त शर्मा का भी हमें सहयोग मिला है। सभी सहयोगियों का साधुवाद।

एक बार पुनः सभी आर्य भाई-बहनों से निवेदन है कि वे आर्यसमाज स्थाप दिवस के अवसर पर प्रतिज्ञा करें कि वे सच्चे आर्य एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती सच्चे अनुयायी बनेंगे।

—डॉ० धर्मपा

(आर्यसन्देश, 17-3-91

अमर शहीद सरदार भगत सिंह

आज भारत स्वतन्त्र है। भारतीय स्वाधीन है। यहां पर हमारा अपना स्वराज्य है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सम्भवत: स्वराज्य तो चाहा है, पर उसने सुराज्य भी चाहा होगा। महात्मा गांधी ने स्वाधीनता के लिए लम्बा संघर्ष किया। उनके नेतृत्व में अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने कार्य किया। लाला लाजपत राय, पं० मोतीलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, पं० जवाहरलाल नेहरू और अन्य अनेक नाम जैसे मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, सरहदी गांधी, सरदार बलदेव सिंह, सरोजिनी नायडू के नाम इस पंक्ति में लिए जा सकते हैं। पर कुछ ऐसे भी नाम हैं जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को हिला कर रख दिया था। उनके नाम से ही बरतानिया हुकूमत कांप उठती थी और वे नाम हैं—मंगल पाण्डे, श्याम जी कृष्ण वर्मा, लक्ष्मी बाई, नाना साहब, विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, मदन लाल धींगड़ा, तिलक, सरदार भगतसिंह, अरविन्द घोष, खुदीराम बोस, जितेन्द्र सान्याल, सुभाष चन्द्र बोस, भाई परमानन्द, गणेश शंकर विद्यार्थी, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्लाह खां, मान्मथनाथ गुप्त, हेमू कलानी और अनेक अन्य नाम जो स्मरणीय है।

इन वीर नौजवानों ने देश की आजादी के लिए अपना लहू दिया था। उन्होंने कभी न सोचा था कि देश के रहनुमा अपने निजी स्वार्थों के लिए रोज सरकारें बनाएंगे और रोज सरकारें तोड़ेंगे। वे देश और जनता की फिक्र कम करेंगे, अपनी खुद की फिक्र ज्यादा करेंगे। राजा का कर्त्तव्य है कि अपनी जनता की फिक्र करे, पर यहां तो भोली जनता को ठुकराया जाता हैं, चारों ओर स्मगलरों को सिर पर बिठाया जाता है। न जाने कितने एम० पी०, एम० एल० ए० हैं जिनके खिलाफ न्यायालय में केस चल रहे हैं। उन्हें माफिया सरगनाओं की सहायता लेने में कोई एतराज नहीं है।

उन वीरों की कुरबानी एक दिन तो रंग अवश्य ही लाएगी। सरदार भगत सिंह के खानदान में देश भक्ति कोई नई बात न थी। उनके पिता सरदार किशन सिंह बड़े धीर गम्भीर और ज्ञानी व्यक्ति थे, पर एक बार उन्हें भी पुलिस से बच कर नेपाल भागना पड़ा था। उनके चाचा अजीत सिंह लम्बे समय तक नजरबन्द रहे थे। एक-दूसरे चाचा सुवर्णसिंह भी क्रान्तिकारी आन्दोलनों से जुड़े थे। सरदार भगत सिंह का तो जन्म ही ऐसे क्रान्तिकारी माहौल में हुआ था।

सरदार भगतसिंह ने डी० ए० वी० स्कूल से मैट्रीकुलेशन पास किया था। आर्य समाजी संस्कारों ने उनके देश भक्ति के संस्कारों को और पक्का कर दिया था। आगे चल कर उनका परिचय सुखदेव, भगवती चरण, यशपाल, जयचन्द्र विद्यालंकार

और राजगुरु से हुआ। जयचन्द्र शचीन्द्र नाथ सान्याल के सम्पर्क में आ चुके थे। जयचन्द्र भगत सिंह के अध्यापक थे। एक कहावत है—गुरु गुड़ ही रह गये और चेले चीनी हो गए। यह कहावत भगत सिंह के जीवन पर खरी उतरती है।

एफ० ए० करने के बाद भगत सिंह के विवाह की बात चली, पर उनके मन में तो कुछ और ही था। वे एक युवती का जीवन बरबाद न करना चाहते थे। वे घर से भाग निकले और दिल्ली जाकर 'अर्जुन' पत्र में काम करने लगे। एक बार डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने बताया था कि भगत सिंह एक बार पूरा एक महीना उनकी कोठरी में रहे थे। घर वालों को उनके दिल्ली प्रवास का पता चला तो वे कानपुर चले गये और वहां पर गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में काम करना शुरू कर दिया। शहीद भगत सिंह हिन्दी जानते थे और हिन्दी में लिखते भी थे। वहाँ पर उन्होंने अपना नाम बलवन्त सिंह रख लिया था। इस जगह का पता भी घर वालों को लग गया। उन्हें सन्देशा मिला कि उनकी मां बीमार है। वे अपनी मां को बहुत प्यार करते थे। मां से मिलने वे पंजाब पहुंचे। उन दिनों सारे पंजाब में 'गुरु का बाग' वाला आन्दोलन चल रहा था। इसका उद्देश्य बहुत ही पवित्र था। कुछ सिख महन्तों ने बड़ी-बड़ी जायदादों पर कब्जा कर रखा था। आन्दोलन का उद्देश्य था कि उनसे ये जायदादें लेकर सिख समाज को सौंप दी जाएं। सरदार भगतसिंह ने भी इस आन्दोलन में मदद की थी।

इन्हीं दिनों बंगाल में गोपी मोहन शाहा एक अंग्रेज को मार कर शहीद हो गये। गाँधी जी ने उनकी बड़ी निन्दा की, पर देशबन्धु चित्तरंजनदास ने उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। भगत सिंह उस समय लायलपुर में थे। उन्होंने क्रान्तिकारी पक्ष का समर्थन किया था। इस पर पुलिस ने भगत सिंह पर राजद्रोह का मुकदमा चलाना चाहा था। काकोरी केस में 'लाहौर के उपदेशक' नाम से जिस व्यक्ति का उल्लेख आया था, वह भगत सिंह ही थे। इस केस में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकउल्लाह खाँ को फांसी की सजा दी गई थी। तभी से भगतसिंह और ज्यादा सक्रिय हो गए।

कांग्रेस के नेतृत्व में साईमान कमीशन का बायकाट चल रहा था। 20 अक्तूबर 1928 को यह कमीशन लाहौर पहुंचा। लाला लाजपत राय पर लाठियां पड़ी और वे शहीद हो गये। आन्दोलन ने जोर पकड़ा। राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने के लिए भगत सिंह, राजगुरु, आजाद और जयपाल को नियत किया गया। सैण्डर्स नामक पुलिस अधिकारी पर हमला किया गया। वह मारा गया और क्रान्तिकारी भाग निकले। भगत सिंह दुर्गादेवी के सहारे बाहर निकल पाये थे। उन्होंने देश को 'वन्देमातरम्' का नारा देने के लिए कमर कस ली। कानपुर के बटुकेश्वरदत्त को लेकर 8 अप्रैल 1929 को दिल्ली में असेम्बली हाल में बम डाला। भगतसिंह के साथ उनके कई साथियों पर मुकदमा चला। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा हुई और कुछ साथियों को काले पानी की सजा मिली।

23 मार्च 1931 को तीनों रहनुमाओं को फांसी दे दी गई। अन्त समय में भगतसिंह ने लिखा था—

कोई दम का मेहमां हूं, ऐ अहले महफिल ।
चिरागे सहर हूं, बुझा चाहता हूं ॥

इन वीरों के बलिदानों को भारत के इतिहास में सदैव याद किया जाएगा। आज जरूरत इस बात की है कि जिस राष्ट्र की स्थापना के लिए इन्होंने कुरबानियां दी थी, उन्हीं के अनुरूप ऐसे राष्ट्र का निर्माण किया जाए, जो जनहित में हों, जो स्वार्थों से परे हो, जो भाई चारा और सहयोग बढ़ाने वाला हो।

—**डा० धर्मपाल**
(आर्यसन्देश, 24-3-91)

सेवा की ओर जिस मनुष्य का झुकाव हो जाता है उसकी दृष्टि पाप रहित हो जाती है। यह हर समय हर प्राणी को सुख देने की बात सोचा करता है। इस तरह वह सबका प्यारा बनकर सबका आशीर्वाद प्राप्त कर लेता है।

—**स्वामी सत्यानन्द सरस्वती**

जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वर का नाम 'सरस्वती' है।

जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरे करता है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है।

—**'महर्षि दयानन्द सरस्वती'**

रामनवमी महोत्सव

भारतीय संस्कृति के दो पुरोधा हैं—भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण। भगवान राम के जीवन पर प्रारम्भ से अन्त तक दृष्टिपात करके देखें तो यह पता लगेगा कि वह महानुभाव कही पर भी अपने स्वार्थ के लिए नहीं सोचता, वह सर्वत्र लोकहित की ही बात करता है। कोई भी व्यक्ति धन-दौलत, राजपाट को नहीं छोड़ना चाहेगा, परन्तु उसने इसकी रत्ती भर भी परवाह नहीं की और सारे राज-पाट को एक राहगीर की तरह छोड़ कर माता कैकेयी की आज्ञा को शिरोधार्य करके, राजमहल से निकल पड़ा। पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण उसके साथ अवश्य गए, परन्तु यदि वे न भी जाते तो उसे कोई कष्ट न होता। वह उनकी रक्षार्थ भी सतत प्रयत्नशील रहा।

परहित की बात कही जा रही है। वह अपने भ्रमण काल में अनेक ऋषि मुनियों, भील-कोल-किरातो, रीछों-बन्दरों, असुरों-राक्षसों, केवट-शबरी से मिला। उसका आचरण सभी के प्रति समभावी रहा। उसने सभी को अपना बना लिया स्वयं उन्हीं का बन गया। ऐसा संगठनकर्त्ता सदैव वन्दनीय है।

परिस्थितियों ने ऐसा मोड़ लिया कि पत्नी का वियोग उसका अपना व्यक्तिगत कष्ट हो सकता था, परन्तु यह भी लोकमंगल का ही साधन बन गया। सीता हरण रावण ने किया था। रावण दुष्ट और अत्याचारी था। सभी भले लोग उससे त्रस्त थे। रावण का संहार करके उसने सभी को आराम पहुंचाया। यह भी एक परहित का ही कार्य किया।

उसने विभीषण को सारा जीता हुआ राज-पाट सौंप दिया। कितना विशाल हृदय था राम का, यह विचारणीय एवं स्तुत्य है।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम है। राम से बड़ा राम का नाम। यह लोकोक्ति न जाने समय के कितने लम्बे अन्तराल को लांघ कर बनी है। यह हमारे लिए प्रेरक है कि हम भले ही राम की पूजा आराधना न करें, पर रामत्त्व को अवश्य धारण करें। यही तो आदर्श चरित्र की महत्ता है। राम ने सामान्य धर्म का पालन किया था। सीता की रक्षा में उन्होंने यही किया और आगे चलकर सीता त्याग में भी। राम धैर्य में हिमवान है। धैर्य की उपमा धरित्री से दी जाती है, परन्तु वाल्मीकि ने धरित्री को भी हिमवान की श्रेणी तक ऊंचा उठाया है। राम का धैर्य पसीजता है, द्रवित होता है, पर हिमालय की भांति टूटता नहीं है।

रामत्व क्षमा में है। आओ हम इस गुण को धारण करें। राम एक व्रतधारी है।

राम एक बोलते हैं, एक बाण उठाते हैं, एक निर्णय लेते हैं। वह एक है। एक की संख्या अपने में पूर्ण होती है।

रामत्व उसके शील में व्यक्त होता है। राम के शील का अनुमान पिता से, माता से, भाई से, सुग्रीव से, रावण से बात-चीत के बीच लगाया जा सकता है। राम हनुमान के संवाद कितने मार्मिक हैं। राम की भाषा, राम का भाव, राम का राग, सब कुछ शीलमय है। वह कठोर से कठोर हृदय को भी द्रवित कर सकते हैं।

राम का यही लोकरंजनकारी रामत्व स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है।

—डा० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 31-3-91)

गहराई से विचार करने पर निश्चय होता है कि सत्य अन्त में ईश्वर से मिला देता है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सबका नियम न करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'अन्तर्यामी' है।

जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'धर्मराज' है।

जो सब प्राणियों के कर्म्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिए परमात्मा का नाम 'यम' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

वैशाखी

वैशाखी पर्व का भारतवर्ष के इतिहास में विशेष महत्व है। यह राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का प्रतीक पर्व है। यह सामाजिक एवं धार्मिक समरसता को आत्मसात किए हुए है। यह पर्व चैत्र के उत्तरार्ध में एवं वैशाख के पूर्वार्ध में उस दिन मनाया जाता है, जिस दिन सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है। अंग्रेजी तिथि के अनुसार यह प्रतिबर्ष 13 अप्रल को पड़ता है। शक संवत, ईसवी संवत्, अथवा अन्य कोई भी कलैण्डर जो सूर्य एवं पृथ्वी की गति से नियमित होता है, उसके अनुसार इसकी तिथि एवं दिन 13 अप्रैल को ही पड़ते हैं।

इस दिन का भारत वर्ष के स्वाधीनता संग्राम में भी विशेष महत्व है। 1919 में वैशाखी के दिन ही जलियांवाला बाग में जनरल डायर के आदेश पर सैकड़ों, हजारों निरपराध भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया गया। वे सरकार के विरोध में एक जनसभा कर रहे थे। इसका प्रभाव भारतीय जनमानस में एक नई ऊर्जा प्रदान करने वाला हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतीयों का उत्साह और अधिक बढ़ गया। जलियांवाला काण्ड के पश्चात् अमृतसर में जब कांग्रेस का महा अधिवेशन होना था, उसके स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती बनाये गये। स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती ने अपने भाषण के द्वारा भारतीय लोगों से ओजस्वी वाणी में कहा था कि यदि अब सोते रहे तो भारत कभी स्वाधीन नहीं हो पाएगा और अंग्रेजों के अत्याचार इसी प्रकार हम लोगों पर होते रहेंगे। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वामी जी ने जिनका पूर्व नाम महात्मा मुंशी राम था, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना वैशाखी के अवसर पर ही की थी।

13 अप्रैल 1749 को सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया ने अहमद शाह अब्दाली का विरोध किया था और पंजाब को अफगान, साम्राज्य के अधीन होने से बचा लिया था। सन् 1775 में सिखों ने मुगलों से संघर्ष करके इसे मुस्लिम साम्राज्य होने से बचाया था। शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह का राजतिलक भी 1801 में इसी दिन हुआ था। सन् 1699 में गुरू गोबिन्द सिंह ने आनन्दपुर में खालसा पंथ की शुरूआत भी इसी दिन की थी। यह बताते हैं कि बौद्ध गया में भगवान बुद्ध को बोध भी इसी दिन प्राप्त हुआ था। पंजाब और पश्चिम भारत में यह दिन बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। लोग गंगा स्नान करते हैं। यद्यपि यह त्योहार किसी विशेष देवता से नहीं जुड़ा हुआ फिर भी इसे उल्लास पूर्वक मनाया जाता है। इसका कारण यही है कि

समय रवि की फसल पक कर तैयार होती है और किसान मस्ती में झूम उठते हैं। भारत का कोई कोना ऐसा नहीं है, जहां पर यह पर्व उल्लास पूर्वक न मनाया जाता हो। चाहे महाराष्ट्र हो अथवा मालाबार, तमिलनाडु हो या उत्तर प्रदेश—सर्वत्र यह दिन मस्ती का दिन होता है। यह दिन राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का दिन है। हमारा कर्त्तव्य है कि राष्ट्रीय एकता के समर्थन हेतु इस दिन को धूमधाम से मनायें।

—**डा० धर्मपाल**
(आर्यसन्देश, 7-4-91)

सेवा लेना जीवन को बेच देना है और सेवा करना जीवन प्राप्त करना है। जिस प्रकार अन्न को स्वयं खाना अन्न को समाप्त कर देना है और अन्न को बो देना उसमें वृद्धि करना है।

—**स्वामी सत्यानन्द सरस्वती**

जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इसलिए उस ईश्वर का नाम 'भगवान्' है।

जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिए उस ईश्वर का नाम 'मनु' है।

जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इसलिए उस ईश्वर का नाम 'पुरुष' है।

—**'महर्षि दयानन्द सरस्वती'**

महात्मा हंसराज

महात्मा हंसराज भारत की पवित्र धरा पर कार्यक्षेत्र में उस समय अवतरित हुए थे, जब यहाँ पर जन-जन को ईसामसीह की भेड़ों में सम्मिलित करने का कुत्सित प्रयास त्वरित गति से चल रहा था। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति ऐसे क्लर्क तैयार करने की थी जिनका शरीर भारतीय हो, परन्तु उनकी आत्मा अंग्रेजियत में रची-बसी हो। ऐसे विकराल षड्यन्त्र को चुनौती देने के लिए महात्मा हंसराज सीना तानकर खड़े हो गए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षा नीति के प्रचार-प्रसार का संकल्प लेकर चलने वाले स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराज के जीवन हमारे लिए प्रेरक हैं। इस महामना ने संसार को दिखला दिया कि वैदिक शिक्षा पद्धत्ति से ही राष्ट्र और विश्व का कल्याण सम्भव है और उसने डी० ए० वी० स्कूलों, कालेजों का ऐसा वट वृक्ष रोप दिया जो आज केवल भारत भूमि पर ही नहीं, अपितु विश्व के अन्य देशों में आर्य-समाज और वैदिक धर्म को गति देने के लिए सतत छाया वितानित कर रहा है।

महात्मा हंसराज चाहते तो सरकारी नौकरी करके ऐशो-आराम की जिन्दगी बिता सकते थे, पर उन्होंने तो चुना था समाज सुधार का कंटकाकीर्ण मार्ग, त्याग, तपस्या और बलिदान का लम्बा जीवन। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था, भयावना था और बलिदान मांगता था। इसी रास्ते पर महात्मा हंसराज चल पड़े थे।

महात्मा हंसराज केवल शिक्षा तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने बीकानेर, राजपूताना, सूरत, मध्यप्रदेश, बड़ौदा, अवध, गढ़वाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ के अकाल में तथा कांगड़ा के भूकम्प के महाविनाश में देवता-तुल्य सेवा कार्य किया। यही कार्य उन्हें महात्मा के नाम से पुकारे जाने की सार्थकता को सिद्ध करता है उनका कार्य युगों-युगों तक मानव के मार्ग को प्रशस्त एवं आलोकित करता रहेगा। उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 14-4-91)

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

जीवन में पूर्णता पाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति दीर्घायु हो। वैदिक प्रार्थना तो यही है कि हम दीर्घायु हों, हम दीर्घायु होने के लिए प्रयत्नशील हों, हम सौ साल तक देखते, सुनते और बोलते रहें तथा कार्यक्षम बने रहें, बल्कि हम तो सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहें, ऐसी हम कामना करते रहें। तथापि जीवन में पूर्णता पाने के लिए दीर्घायु होना आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति लम्बी आयु तक जीवित रहता है, फिर भी वह कुछ कर नहीं पाता, दूसरी ओर कुछ व्यक्ति बहुत कम आयु तक इस संसार में रहते हैं और वे संसार को एक नई दिशा दे जाते हैं—जगद्गुरु शंकराचार्य, महात्मा ईसा, महावीर बुद्ध, विवेकानन्द, दयानन्द—इन सभी की आयु बहुत लम्बी तो नहीं थी, फिर भी इन्होंने विश्व के मानव को नई दिशा दी। उन्होंने विश्व को नया प्रकाश दिया। उन्होंने लोगों को अमरता का सन्देश दिया। ये सभी नाम धर्म, दर्शन, आध्यात्म और मानवता के लिए कार्य करने वालों के हैं। अन्य क्षेत्रों में भी कम आयु में पूर्णता पाने वालों के नाम हैं। उनकी चर्चा यहाँ पर अभीष्ट नहीं है, यद्यपि उनकी चर्चा करने से उपर्युक्त कथ्य को पुष्ट करने में सहायता ही मिलती। एक लिली का फूल केवल एक दिन के लिए खिलता है, पर उसकी सुरभि से सम्पूर्ण प्राणी जगत् सुरभित हो उठता है, जबकि "ओक" वृक्ष की आयु तीन सौ वर्ष होती है, पर बाद में वह मात्र ईंधन है और अधिक हुआ तो ईमारती लकड़ी। इसी प्रकार श्रेष्ठता के लिए बड़ा आकार और लम्बी आयु आवश्यक नहीं है। जीवन में पूर्णता, श्रेष्ठता के लिए छोटा आकार और कम आयु से काम चलाया जा सकता है।

विश्व की संस्कृतियों में ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिनका मानव मूल्यों की वृद्धि में योगदान स्मरणीय है। ऐसे ही महामानव ऋषि दयानन्द थे। उन्होंने विश्व को वैदिक पथ पर चलने की प्रेरणा दी। वैदिक शिक्षाएं सर्वकालिक और सर्वव्यापक हैं। ये सभी का कल्याण चाहने वाली हैं। "स्वस्ति पन्थामनुचरेम" हम कल्याण मार्ग के पथिक हों। उस ऋषिवर के कार्य को उसके बाद आगे बढ़ाने वाले थे—स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा हंसराज, पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त और स्वामी दर्शनानन्द आदि। पं० गुरुदत्त का नाम इस सूची में उल्लेख्य है। वह प्रतिभाशाली युवक मात्र 26 वर्ष जिया, पर ये 26 वर्ष आर्य समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे।

उस ऋषि दीवाने पं० गुरुदत्त विद्यार्थी पर वैदिक धर्म तथा ऋषि का रंग ऐसा चढ़ा कि, वह चढ़ता ही गया। वह रंग और गाढ़ा होता गया। विज्ञान का विद्यार्थी पाश्चात्य दर्शन का अध्येता जब ऋषि के सम्पर्क में आया, तो उसके मन में पड़ी

सन्देह की परतें, दूर होती चली गईं। उसका मन शिवसंकल्पमय हो गया। उसे लाहौर की आर्य समाजों ने लाला जीवनदास के साथ अपना प्रतिनिधि बनाकर, अजमेर में रोग शैय्या पर पड़े ऋषि दयानन्द की सेवा करने के लिए भेजा था। उसने अपने गुरु की भक्ति भाव से सेवा सुश्रुषा की। अन्तिम दिनों में ऋषिवर के चेहरे पर शान्त और सौम्य भावों को देखकर वह चकित रह गए। इस असह्य पीड़ा के क्षणों में भी ऋषिवर अविचलित थे। उनके मुख से अन्तिम क्षणों में जो शब्द निकले —' हे प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो। तूने अच्छी लीला की।'' इन्होंने तो युवा गुरुदत्त की काया ही पलट दी। उसके मन का सारा अन्धकार प्रकाशमान हो उठा।

अजमेर से लौट कर गुरुदत्त ने वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार अपने जीवन का ध्येय बना लिया उसने दो कपड़े बनवाए—आर्य समाज के पांच-पांच नियम दोनों कपड़ों पर लिखवाए और आगे-पीछे लटका लिए। जब उनकी श्रीमती जी ने पूछा कि यह क्या हुलिया बनाया है, तो वे बोले बस देवी, अब यह शरीर अपना नहीं रहा। यह तो उस ऋषि का हो गया और वह दीवाना घर से बाहर निकल पड़ा। रात-दिन उसने अपने आपको ऋषि कार्य में झोंक दिया। कुछ लोग पूछते कि क्या कर रहे हो। वे कहते कि ऋषि का जीवन चरित्र लिख रहा हूं। वे पूछते कि कहां लिख रहे हो तो उत्तर मिलता कि "अपने जीवन में उसे क्रियात्मक रूप में लिख रहा हूं।'' ऐसा था वह दिवाना। वैदिक धर्म के प्रचार और ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए, उसने वाणी और लेखनी से अनवरत परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया था। उनके साथ रहने वालों का कहना है कि जब वे "वैदिक मैगजीन'' लिखने बैठते थे तो वे कई-कई दिन बाद घर से निकलते थे। जब वे पढ़ने लगते थे तो बिना विश्राम किए कई-कई दिन तक पढ़ते रहते थे। वे कई दिन तक सोते भी नहीं थे। लाला लाजपत राय ने लिखा था—एक असाधारण व्यक्ति था वह। अन्त समय में वे भी वेदमन्त्रों का उच्चारण करते रहे और मृत्यु के क्षण तक उनके मन की शान्ति भंग नहीं हुई। कुछ क्षणों में ही उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार असह्य पीड़ा भोग कर 19 मार्च 1890 को प्रातः 7.00 बजे उसका प्राणान्त हुआ।'' उस ऋषिभगत के चेहरे पर भी वही सौम्यता तथा शान्ति थी जिसके दर्शन उसने सात वर्ष पहले अजमेर में किए थे।

एक असाधारण व्यक्ति, एक सच्चा गम्भीर तथा प्रगामी संस्कृत विद्वान और पुरातन ऋषियों का उत्तराधिकारी इस संसार से उठ गया। आर्य समाज जिन पर गर्व करता था, जो समाज के रत्न थे, जिन्हें हम देश के भूषण समझते हैं, जिन पर हम सबको गर्व था तथा जो सत्य और ज्ञान को ही सर्वोपरि समझते थे, ऐसे पं० गुरुदत्त विद्यार्थी आज हमारे बीच में नहीं हैं। उनका भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है, पर उनका कर्त्तव्य हमारे बीच में है, उनका युवापन हमारे बीच में है, उनका ज्ञान-विज्ञान-विश्लेषण हमारे बीच है, उनका आदर्श हमारे सम्मुख है जो आने वाली पीढ़ियों को इसी भांति प्रेरणा देता रहेगा।

उस अमर सेनानी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी को हमारी श्रद्धांजलि।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 21-4-91)

पं० रामचंद्र देहलवी

किसी भी जाति और राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने पूर्वजों के श्रेष्ठ कर्मों का स्मरण करें तथा अपनी संस्कृति और धर्म के अजस्त्र प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखें। पिछले दिनों महात्मा हंसराज दिवस समारोह में हमारे प्रधान-मन्त्री ने कहा था कि किसी भी राष्ट्र को नई दिशा देने वाले राजा नहीं होते, बल्कि राजा वे होते हैं, जो साधु-सन्तों—महापुरुषों की परोपकार एवं मानव कल्याण की भावना को अपने अन्दर समाहित कर लेते हैं। और यह कार्य ऋषियों का है। महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायियों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। ऐसे ही हमारे विद्वान प्रचारक थे पं० रामचन्द्र देहलवी।

पं० रामचन्द्र देहलवी का जन्म मध्य प्रदेश के नीमच शहर में 1881 ईस्वी की रामनवमी के दिन हुआ था। इसीलिए उनका नाम रामचन्द्र रखा गया। जीविका निर्वाह के लिए रामचन्द्र दिल्ली आए। यहां पर पहले नौकरी की और फिर अपने श्वसुर की दुकान पर कार्य करने लगे। रामचन्द्र देहलवी की पत्नी का निधन उस समय हो गया था जब वे केवल 36 वर्ष के थे। यद्यपि अनेक प्रस्ताव पुर्नविवाह के आए परन्तु वैदिक धर्म का प्रभाव उन्हें अकेले ही जीवन यात्रा के पथ पर साहस पूर्वक चलने की प्रेरणा देता रहा।

उन दिनों चांदनी चौक के फव्वारे पर दो दिन मुसलमान और दो दिन ईसाई अपने-अपने धर्म का प्रचार करते थे। पं० रामचन्द्र देहलवी ने हिन्दू धर्म के ऊपर किए गए इन कटाक्षों को सुना। उसी दिन से उन्होंने सोच लिया कि उन्हें भी वैदिक धर्म का इसी तरह प्रचार करना चाहिए। उन्होंने भी उसी स्थान पर प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके व्याख्यानों में इतनी भीड़ होती थी कि यातायात में बाधा पड़ने लगी और उनसे आग्रह किया गया कि वे अपने व्याख्यानों के लिए गांधी ग्राउण्ड को अपना लें। बस यहीं पर 1910 से 1925 तक उनके व्याख्यानों का सिलसिला बिना व्यवधानों के चलता रहा। उन्होंने विधिवत कुरान का अध्ययन किया और ईसाई धर्म शास्त्र का भी। वैदिक धर्म के उत्कर्ष प्रवक्ता, तार्किक, उच्चकोटि के शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी की ख्याति दिग्दिगन्त फैल गई। हैदराबाद में उनके व्याखानों ने अभूतपूर्व जागृति फैलाई। और निजाम सरकार ने तो उन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। अत्यधिक वृद्ध होने पर भी उन्होंने धर्म प्रचार के कार्य से मोह नहीं मोड़ा। 2 फरवरी, 1968 को दिल्ली में उनका निधन हुआ। पं० रामचन्द्र देहलवी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जो वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में अपनी विशिष्ट भूमिका को रेखांकित करते हैं।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 28-4-91)

आर्यसमाज और युवा शक्ति

किसी भी संस्था के संचालन के लिए विवेक, कर्म और अर्थ इस त्रयी की आवश्यकता होती है। किसी भी एक पक्ष की कमी हो जाने से कार्य सिद्धि नहीं हो पाती। यही बात श्री जशंकर प्रसाद ने भी कही थी—ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है क्यों इच्छा पूरी हो मन की। अतः साध्य को प्राप्त करने के लिए विद्वानों, कार्यकर्त्ताओं और धनवानों का सम्मिलित प्रयास होना चाहिए। यही बात आर्यसमाज के लिए भी सही है। जहां पर तीनों का समन्वय हैं, वहां पर अच्छा कार्य हो रहा है, जहां पर किसी एक तत्त्व का दूसरों पर अधिक प्रभाव हो गया, वहीं पर समस्या आ गई है। जिन आर्यसमाजों के पास धन और पार्थिव सम्पत्ति ज्यादा हो गई, वे केवल उसी के संरक्षण तक सीमित हो गए, असली कार्य वे भूल गए। उनकी इच्छा यही रहती है कि कुछ भवन और बन जायें, कुछ दुकानें और बन जायें अथवा पैसा कमाने के लिए आर्यसमाज मन्दिरों में स्कूल ही खोल दिए जायें। स्कूल खोलना अच्छा है। यदि इससे सामाजिक लाभ हो, अन्यथा नहीं।

आर्यसमाज की जीवन्तता के लिए यह आवश्यक है कि लोकोपयोगी, जनोपयोगी कार्य हाथ में लिए जायें। दिल्ली में अनेक आर्यसमाजों में ऐसे धर्मार्थ कार्य चलाए जा रहे हैं। इन कार्यों के संचालन के लिए ऐसे लोग चाहिएं जो सक्रिय हों, आलस्य से परे हों, जिनमें युवा भावनाएं हों। जो दौड़कर कार्य कर सकें। मुझे प्रसन्नता है कि यहां पर ऐसे युवा समाज कार्य कर रहे हैं। आर्य वीर दल इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। गाजियाबाद में आर्यसमाज राजनगर में आर्य युवा सम्मेलन मनाया गया। युवकों के हौसले बुलन्द थे और उनके विचार भी बहुत ही ओजस्वी। उनमें कुछ कर गुजरने की तमन्ना है। यह प्रसन्नता और सन्तोष की बात है। इसी प्रकार आर्यसमाज लाजपत नगर में भी युवा सम्मेलन आयोजित किया गया।

युवा शक्ति सप्राण होती है। पर इनकी दिशा का अनुकूलन भी अनिवार्य है। देश की वर्तमान परिस्थितियों में युवा शक्ति को सही मार्ग निर्देशन मिले, तो वे बहुत ही अच्छा कार्य कर सकेंगे। उनकी क्षमताओं का संसाधन विकसित किया जाना चाहिए।

इन सबसे ऊपर संस्था के उद्देश्यों का महान होना भी अनिवार्य है। आर्यसमाज वेदों के अनुसरण पर बल देता है। वेद सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। अतः इसके उद्देश्य, विचार निश्चय ही महान हैं। आओ हम सब इन विचारों को आगे बढ़ायें।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सदेन्श, 5-5-91)

धर्म का वास्तविक स्वरूप

हमारी परम्परा में धर्म का प्रयोग बहुत व्यापक परम्परा में हुआ है। प्रायः लोग इसे अत्यन्त सीमित और संकुचित कर देते हैं। धर्म नहीं सिखाता आपस में बैर रखना। फिर भी सब से ज्यादा बैर इसी के कारण होते हैं। धर्म आतंक नहीं सिखाता, अलगाव नहीं सिखाता, फिर भी इसी के नाम पर अलग होने की दुहाई दी जाती है। ऐसा लगता है कि यह लोगों का संकुचित धर्म और वास्तविक धर्म कोई अलग-अलग तत्व हैं। व्यापक विषद दृष्टि ही इस तेजी से बढ़ रहे विखंडन और अविश्वास के अन्धकार को समाप्त कर सकती है।

धर्म के साथ निम्न अर्थ मुख्य रूप से जुड़े हुए हैं—

1. जो जीवन को धारण करे वह धर्म है।

जो सम्पूर्ण जीवन को सम्भाल कर रखे, वह धर्म है। जीवन जीते हुए, जीवन को पूरे मन से स्वीकार करते हुए, उसकी सार्थकता पहचानते हुए ही धर्म को पाया जाता है। सार्थकता क्या है? सार्थकता मनुष्यत्त्व की भावना में है। मनुष्यत्त्व सबके भाव को अपना भाव मानने की अपेक्षा करता है 'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।' 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'—साराजहां अपना है'—ये भाव मनुष्यत्त्व के हैं। सारे संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।

सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

यह जो सबके भाव को अपना भाव मानने की दृष्टि है, यही मनुष्यता है। इस भाव से दूर होना नृशंसता है। यही मनुष्यता की हत्या है। इस नकारात्मक भाव से मुक्त होना ही धर्म है। महाभारत में तीन बार इस धर्म की परीक्षा हुई। युधिष्ठर को धर्म का प्रतिमान माना गया। ये तीन प्रसंग हैं—युधिष्ठिर यक्ष प्रसंग, चित्रसेन-दुर्योधन प्रसंग, कुत्ते के साथ स्वर्गारोहण। पहले में युधिष्ठिर ने माद्री पुत्र का जीवन मांगा, दूसरे में उसने बैर-भाव रखने वालों की सहायता की, तीसरे में उसने अभिन्न सखा कुत्ते के बिना स्वर्ग को भी ठुकरा दिया। जो इन तीन परीक्षाओं में खरे उतरे उसे इस जीवन संग्राम में स्थिर माना गया। आज तो जरा से स्वार्थ के लिए लोग साथी को भूल जाते हैं। अतः यह मनुष्यत्त्व ही धर्म है।

धर्म की अवधारणा का दूसरा पहलू है, उसका सहज होना। वह तो अन्दर

रहता है। महाभारत की धर्मव्याध की कथा इसका उदाहरण है। वह व्याध होते हुए भी धार्मिक है, जबकि तपस्वी ब्राह्मण धार्मिक नहीं। उस व्याध के जीवन व्यापार में धर्म रचा बसा है।

धर्म का तीसरा पक्ष है—उसकी गतिशीलता। धर्म ऋत और सत्य का एकीकरण है। ऋत का अर्थ है गति, सत्य का अर्थ है सत्ता में बने रहना। गति ऐसी न हो जो स्वरूप की पहचान नष्ट कर दे। बने रहने का यह अर्थ नहीं है कि ठहर जाए। इसीलिए दोनों के समन्वय की बात कही गई है।

यदि इन तीनों बातों का अध्ययन करें तो यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि धर्म मानव मात्र का है।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश 12-5-91)

प्यारे भाइयो ! हम खायें अवश्य परन्तु जीने को, हम जीयें अवश्य परन्तु सेवा को। इस प्रकार की भावना बनने पर सब राग-द्वेष समाप्त हो जाते हैं और चारों ओर से सुख ही सुख बरसता है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'विश्वम्भर' है।

जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'काल' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

सारस्वत साधना के प्रतीक : आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के सर्वोच्च पद, परिद्रष्टा पद पर सुशोभित हैं। आपका जन्म सम्वत् 1958 में हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती जी महाराज की गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति से प्रभावित होकर आपके माता-पिता ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए भेज दिया उस समय गुरुकुल कांगड़ी गंगा पार कांगड़ी ग्राम के निकट गंगा को दो विशाल धाराओं के बीच स्थिर था। उस प्राकृतिक वातावरण में आपने ब्रह्मचर्य आश्रम की प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार तपस्या और संयम का जीवन व्यतीत करते हुए चौदह वर्षीय दीर्घ साधना के पश्चात् विद्यालंकार उपाधि प्राप्त की। इस अध्ययन काल में संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन शास्त्र और वैदिक साहित्य का अध्ययन करने के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य और पाश्चात्य दर्शन का भी अध्ययन किया। आप मेधावी छात्र थे। आपने विश्वविद्यालय की सभी परिक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया। विद्यालंकार परीक्षा में आपने चार स्वर्ण पदक प्राप्त किए। संस्कृत वाङ्मय के वैदिक साहित्य का विशेष एवं अनुसंधान परक अध्ययन करने के लिए आपको 'वेद वाचस्पति' उपाधि से मंडित किया गया। सन् 1976 में आपको गुरुकुल कांगड़ी की सर्वोच्च उपाधि वेद मार्तण्ड से सम्मानित किया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सुशिक्षित एवं दीक्षित होकर आप 1928 में दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर में चले गए। आपने वहां पर उपाध्याय के रूप में, बाद में प्रधानाचार्य के रूप में 1943 तक कार्य किया। 1943 में आपको गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का प्रधानाचार्य बनाया गया। आपकी शिक्षा परस्परा दिक्-दिगन्त तक विस्तीर्ण है। आपके शिष्यों ने राष्ट्रीय जीवन-धारा के अनेक क्षेत्रों में प्रशंसनीय एवं सराहनीय कार्य किया। गुरुकुल कांगड़ी को भारत सरकार से विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त हो जाने पर आपने नए परिवेश में कुलपति (Vice Chancellor) के रूप में भी चार वर्ष तक कार्य किया। सन् 1971 में आपने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की 28 वर्ष की दीर्घकालीन सेवा से अवकाश ग्रहण किया।

आपने भारतीय संस्कृति की विचारधारा और संस्कृत वाङ्मय के वैदिक साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष सहयोग दिया। आपने समय-समय पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया—वरुण की नौका (2 भाग), वेदोद्यान के चुने हुए फूल, वेद का

राष्ट्रीय गीत, मेरा धर्म, समाज का कायाकल्प आदि ।

आचार्य जी ने एक महान ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम है "वेदों के राजनीतिक सिद्धांन्त"। अनेक वर्षों के अध्ययन, मनन, चिन्तन के पश्चात् उन्होंने इस ग्रंथ का प्रणयन किया। आचार्य जी ने वेद में सूत्र रूप में वर्णित राजनीति ज्ञान को इस ग्रंथ में पल्लवित किया है। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में राज्य संस्था का प्रादुर्भाव और विकास, राजा का चुनाव, राजा का राज्य-काल, राजा राज्यच्युति, चुनाव पद्धति, बैलट पेपर, छोटे मांडलिक राज्यों से लेकर चक्रवर्ती राज्य, विश्व राज्य का निर्माण, राज्यों के संसद मन्त्रीमण्डल, प्रजातन्त्र का स्वरूप, न्याय-व्यवस्था, उदार राजनीति, स्त्रियों के राजनैतिक अधिकार, राष्ट्र रक्षा आदि विषयों पर वेदों के आधार पर सम्यक् अनुसन्धानात्मक विवेचन किया है। ग्रंथ के दूसरे भाग में राष्ट्र को समृद्धशाली बनाने के उपायों पर विचार किया है। तीसरे भाग में राष्ट्र की प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में विचार किया है।

यह ग्रंथ लिख कर आचार्य जी ने वेदों के आधार पर मौलिक, सर्वाङ्गपूर्ण स्वतन्त्र राजनीति शास्त्र की रचना की है।

आचार्य जी का एक और महान् ग्रन्थ "वेदों की वैज्ञानिकता" प्रकाशित हो चुका है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार की प्रह्लाद पत्रिका का आचार्य प्रियव्रत अभिनन्दन अंक प्रकाशित करने के लिए डा० विष्णुदत्त राकेश और उनके सहयोगियों का हार्दिक अभिनन्दन।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 19-5-91)

जो सत्योपदेशक सकल विद्यायुक्त, सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता और धर्मात्माओं से प्राप्त होने योग्य, छलकपटादि से रहित है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'आप्त' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

राष्ट्रीय निर्वाचन महाकुम्भ

यह हमारी राष्ट्रीय अव्यवस्था का द्योतक है कि जो राष्ट्रीय निर्वाचन पांच वर्ष बाद होना चाहिए था, वह मात्र उन्नीस महीने बाद हो रहा है। यह तो सही है कि हमारे राष्ट्रीय नेता कोई स्थायी नेतृत्व प्रदान नहीं कर सके हैं, पर यह भी सही है कि जनता भी ऐसे प्रतिनिधियों को नहीं चुन सकी जो स्थायी नेतृत्व प्रदान कर सकें, जो जोड़-तोड़ से ऊपर उठकर राष्ट्रोत्थान एवं समाज कल्याण के कार्यों में भागीदार बन सकें, जो स्वार्थों से ऊपर उठकर परहित की बात कर सकें। इस महाकुम्भ में भाग लेना बहुत महंगा और अनावश्यक रूप से प्रदर्शन का तामझाम हो गया है। जो व्यक्ति इतना खर्च करके संसद तक पहुंचेगा, उससे क्या आशा की जा सकती है। ऐसा लगता है कि राजनैतिक जीवन भी राष्ट्रीय कल्याण हेतु समर्पण एवं निष्ठा का जीवन न होकर कुछ लोगों के लिए व्यावसायिक कार्य व्यापार बन गया है।

कुछ भी हो इस निर्वाचन से कोई भी व्यक्ति अछूता तो रह नहीं सकता। यह प्रेम को पथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है। जो उम्मीदवार है उनके लिए भी और जो मतदाता हैं, उनके लिए भी यह कठिनाइयों से भरा मार्ग है। उम्मीदवार परेशान हैं कि वह किस प्रकार विजयश्री को प्राप्त करे। मतदाता परेशान है कि वह किसे अपना मत दे। संसद की सड़क पर चलते-चलते सब एक से हो जाते हैं। हम चाहते हैं कि लोग निष्पक्ष हों, वे नैतिक हों, वे मानवमात्र को अपना समझें, वे जात-पांत क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता से ऊपर हों, पर ऐसा हो नहीं पाता। बड़ी पार्टियां उसे उम्मीदवार बनाती हैं जो जीत सकता हो, चाहे जैसे भी जीत सकता हो, चाहे बूथ पर कब्जा करके या भ्रष्टाचार पूर्ण हथकंडे अपना कर। यहां अनेक सम्प्रदाय हैं, असमानता है, अनेक जातियां हैं, कुछ लोग धन-सम्पन्न, कुछ गरीबी रेखा से भी नीचे के गरीब। धन सम्पन्न तो वोट डालने भी नहीं जाते। केवल गरीब जाते हैं, पर उनका अपने वोट पर कोई अधिकार नहीं है। उनका वोट उसके पास है जो उनका अन्नदाता है, जो उन्हें कर्ज देता है, जो उनका धर्मगुरु है, जिसके खेत या कारखाने में वे काम करते हैं या जो उनकी कालोनी का दादा है। एक नया विचार आया है—पंचायती वोट का। पंचायत तय करती है कि वोट किसे देना है। सभी को वोट डालने जाने की जरूरत नहीं। कुछ ही लोग सबके वोट डाल देते हैं।

भाइयों, चिन्ता मत करो कि तुम्हारा नेता जीतेगा या नहीं। अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर वोट दो। उसे वोट दो जो सबका कल्याण करने वाले हों, जो राष्ट्र को घेरने वाले शत्रुओं का हनन करने वाले हों, जो आन्तरिक शत्रुओं को कुचलने वाले हों, जो अपनी इन्द्रियों को तथा प्रजा को वश में करने वाले हों, जो बादलों के समान सुखों की वर्षा करने वाले हों, जो पापनाशक हों।

आओ, हम ऐसे ही लोगों को अपना नेता चुनें। —डॉ॰ धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 19-5-91)

स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का गौरवपूर्ण इतिहास आन्दोलन का इतिहास है। आर्यसमाज ने राष्ट्रोत्थान के लिए तथा सामाजिक कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए। स्वाधीनता आन्दोलन में आर्यसमाज की सराहनीय भूमिका से सभी सुपरिचित हैं। हम आज भी श्रद्धापूर्वक उस तेजस्वी स्वामी श्रद्धानन्द को याद करते हैं जिसने घंटाघर पर गोरे सिपाहियों की संगीनों के सामने छाती खोल दी थी, उसी प्रकार इतिहास में स्वामी रामेश्वरानन्द जी को भी याद किया जाएगा, जिसने 7 नवम्बर, 1966 को गरजती हुई आवाज में कहा था कि 'पार्लियामेंट को घेर लो' और लोग उनकी आवाज पर पार्लियामेंट की ओर बढ़ चले थे। उनकी नेतृत्व शक्ति आर्यसमाज में सदा प्राण फूंकती रहेगी।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान, निर्भीक संन्यासी और स्वतन्त्रता सेनानी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती 1962 में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। संसद में उनकी ओजस्वी वाणी स्पष्टवादिता और क्रान्तिकारी राष्ट्रीय विचारों को आदरपूर्वक सुना जाता था। आपने संसद में हिन्दी रक्षा, गोरक्षा, मद्यनिषेध, गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली आदि विषयों पर सदैव आर्यसमाज का सबल पक्ष प्रस्तुत किया।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज वेदों के प्रकांड विद्वान थे। वे गुरुकुल घरौंडा के संस्थापक थे और आर्ष पाठविधि के अनुसार वैदिक ज्ञान के प्रसार में संलग्न थे। स्वामी जी महाराज ने आर्यसमाज द्वारा चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों—हैदराबाद धर्मयुद्ध (1939), पंजाब हिन्दी सत्याग्रह (1957), दिल्ली गौरक्षा आन्दोलन (1966) आदि में प्रथम पंक्ति में रहकर सफल नेतृत्व किया था।

1961 में जब पंजाबी सूबे की मांग को लेकर मास्टर तारासिंह ने आमरण अनशन शुरू किया, तो स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने भाषा के आधार पर बनाए जाने वाले पंजाबी सूबे की मांग के विरोध में आमरण अनशन करने की घोषणा कर दी थी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देश पर स्वामी जी महाराज आर्यसमाज दीवान हाल में 16अगस्त, 1961 को प्रातःकाल यजुर्वेद पारायण यज्ञ के पश्चात् आमरण अनशन पर बैठ गए थे। अन्त में मास्टर तारासिंह के अनशन टूट जाने के बाद ही आपने 24 अगस्त को अपना अनशन समाप्त किया था। अनशन के दिनों में स्वामी जी को मारने के अनेक प्रयास किए गए। एक दिन किसी दुष्ट ने दीवानहाल में एक शक्तिशाली बम फेंक दिया था, जिसे सावधानी से उठाकर श्री ओमप्रकाश त्यागी ने एक बाल्टी में रख दिया था और दुश्मनों की चाल को असफल कर दिया था। उ

समय श्री लाला रामगोपाल शालवाले (वर्तमान स्वामी आनन्दबोध सरस्वती) और उनके साथी चौबीस घण्टे दीवानहाल में ही रहते थे। बम की घटना वाले दिन रात को 12 बजे सेठ जुगल किशोर बिडला दीवानहाल में आए और पूछने लगे कि बम वाली घटना का आर्य भाइयों पर कोई विपरीत प्रभाव तो नहीं पड़ा, तो उस समय लाला रामगोपाल शालवाले ने कहा था कि इससे हमारा उत्साह और ज्यादा बढ़ गया है।

स्वामी जी महाराज का शताधिक वर्षों की आयु में 8 मई, 1990 को निधन हुआ था। उस वीर पुरुष को हमारी विनत श्रद्धांजलि।

—डा॰ धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 19-5-91)

सत्य वह है जो सच्चिदानन्द से मिलता है, सबको सुख पहुँचाता है, निर्भय बनाता है और राग-द्वेष मिटाकर मुक्ति दिलाता है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'शेष' है।

जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम 'शङ्कर' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

महर्षि दयानन्द सरस्वती और कृषि

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी लगभग अस्सी प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है। अधिकांश किसान गांवों में रहते हुए; कृषि के संवर्धन में लगे हैं। शहरों में अनेक प्रयोगशालाओं में कृषि को बढ़ाने के लिए उर्वरकों तथा बीजों की नस्ल में सुधार के लिए, अनुसंधान किये जा रहे हैं। पूसा इन्स्टीट्यूट इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। देश में हुई औद्योगिक और तकनीकी प्रगति का लाभ किसान को भी पहुंचा है। कृषि आज वर्षा पर निर्भर नहीं है। सिंचाई के लिए नए आविष्कार किए जा चुके हैं। नहरों और ट्यूबवैलों का भरपूर उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है।

पिछले वर्षों देश में सूखा पड़ा। इसका मुख्य कारण तो वर्षा न होना था। दूसरा कुओं में जल स्तर नीचे पहुंच जाना था। जल स्तर के नीचे पहुंचने के पीछे एक महत्त्वपूर्ण बात है। वह है पहाड़ों से जल्दी पानी बह जाना, नदियों में भी पानी कम हो जाना। पहाड़ों पर से पेड़ों की कटाई निरन्तर हो रही है जिसके कारण वहां पानी नहीं रुकता। वृक्षों के कम होने से पर्यावरण की भी समस्या उठती है। सरकार का इन सब समस्याओं की ओर ध्यान गया है और इन्हें हल करने के लिए निरन्तर प्रयास भी किए गए हैं। सूखे का सीधा असर हमारी खेती और पशुओं पर पड़ा है। आदमियों के लिए तो खाद्यान्न के भण्डार हमारे पास थे, पर चारे का प्रबन्ध करने के लिए हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

हमारे प्रधानमन्त्री ने इस समस्या का शीघ्र समाधान खोजने और तत्काल कार्यवाही करने के लिए सभी प्रान्तों के मुख्यमन्त्रियों की एक बैठक बुलाई थी। इसमें निर्णय लिया गया था कि सूखे को अकाल का रूप नहीं लेने दिया जाएगा और किसी को भूखा नहीं मरने दिया जाएगा। इस घोषणा से देश के लाखों सूखा पीड़ित लोगों को नया, बल, विश्वास और भरोसा मिला है। हमारी सरकार ने इस सूखे से निपटने के लिए अनेक राहत कार्य किए थे। प्रधानमन्त्री ने स्वयं सेवी संस्थाओं से भी इस कार्य में सहयोग की अपील की। वास्तव में यह समस्या कुछ लोगों की, क्षेत्र विशेष की या सरकार की न रह गई थी। यह तो राष्ट्र की समस्या थी। यह पूरे राष्ट्र के लिए एक चुनौती थी।

सूखे का प्रभाव सबसे ज्यादा गांवों के लोगों पर पड़ा। इस सूखे का क्षेत्र राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हरियाणा और उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था। सरकार ने इससे प्रभावित लोगों को सहायता पहुंचायी और मानव-

तावादी स्वयं सेवी संस्थाओं ने भी सहायता पहुंचायी। लोगों ने व्यक्तिगत रूप से भी सहायता पहुंचायी।

सबसे भयंकर स्थिति का सामना पशुओं को करना पड़ा। जब किसान, कुछ स्थानों पर उन्हें चारा मुहैय्या न कर पाए तो वे तड़प-तड़प कर मर गए। पशुओं की रक्षा करना हमारी राष्ट्रीय जिम्मेदारी है। यह हमारी सरकार की भी जिम्मेदारी है और अनेक स्वयं सेवी संस्थाओं की भी। देश में अनेक गौशालायें हैं। इन सभी का संयुक्त दायित्व है कि वे सब मिलकर पशुओं की रक्षा करें। हमारी सरकार के बीस सूत्री कार्यक्रम में भी जहाँ-जहाँ ग्रामीण विकास की बात कही गई है, वहां-वहां पशुओं के संरक्षण की बात कही गयी है। यहां तक कि हमारे संविधान की प्रस्तावना में, तथा अन्य स्थानों पर भी पशुओं के संरक्षण की बात को याद रखा गया है। हमारे संविधान में नीति निर्देशक तत्त्वों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उसके तत्व संख्या पांच और छः इस प्रकार हैं—पशु तथा कृषि सुधार; दुधारू पशुओं के वध पर रोक।

पशु तथा कृषि सुधार की बात अनेक महापुरुषों ने समय-समय पर उठाई है। ऐसे ही एक महापुरुष के विषय में आज हम बात करेंगे। महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम समाज सुधारकों की पहली पंक्ति में बड़े ही सम्मानपूर्वक याद किया जाता है। वे भारत के पुनर्जागरण काल के एक महान पुरोधा थे। राजाराम मोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, अरविन्द और स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र जागरण के लिए समर्पित महामानव थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने समाज सुधार के अनेक कार्य किए। उनके कार्य देश, धर्म और समाज के कल्याण के लिए याद किए जाते हैं। उन्होंने 1875 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के नियमों में मानवमात्र के कल्याण की अनुगूंज है। उन्होंने एकेश्वरवाद की स्थापना करके भारत के लोगों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। 1877 में महारानी विक्टोरिया के दिल्ली दरबार के समय भारत के अनेक भागों से आये भद्रपुरुषों से मिल-कर राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयास किया। वे जन्मगत जातिवाद के विरोधी थे तथा गुण कर्म स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे। इसी आधार पर वे दलितों तथा हरिजनों को गले लगाकर, समान अधिकार दिलाने के पक्षधर थे। स्त्रियों के लिए उनका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकता था। जिन स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार नहीं था, उनके लिए महर्षि दयानन्द ने पाठशालायें खुलवाई। 'स्त्री-शूद्रौ नाधीयताम्' का विरोध किया। वे स्त्रियों के लिए समान अधिकार चाहते थे। उनकी मान्यता थी कि यदि पुरुष अपनी पत्नी के मरने के बाद पुनर्विवाह कर सकता है, तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती। वे स्त्रियों के पुनर्विवाह के समर्थक थे। उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। टोना, टोटका, बलि जैसी कुप्रथाओं का भी उन्होंने जमकर विरोध किया। उन्होंने देश में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक क्रान्ति का सूत्रपात किया।

हमारे देश में 1857 की सशस्त्र क्रांति विफल हो चुकी थी। इसलिए वे जन-

जागरण में विश्वास करते थे। उन्होंने अनेक राजाओं को उपदेश देते समय स्वाधीनता, के महत्त्व का प्रतिपादन किया था। यहां तक कि अपने प्रवचनों में भी परमात्मा से स्वराज्य और स्वतन्त्रता के लिए प्रार्थना किया करते थे। दादाभाई नौरोजी ने 1906 में कहा था कि उन्होंने स्वराज्य शब्द सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द के ग्रंथों से सीखा।

महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक से कलकत्ता में स्पष्ट कहा था—मैं किसी भी स्थिति में इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों के विकास के लिए, और संसार के राष्ट्रों में सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए यह मेरा भारत वर्ष देश (आर्यावर्त्त) शीघ्र ही पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करे। मैं प्रतिदिन प्रातः-सायं भगवान से प्रार्थना करते हुए यह मांगता हूँ कि वह दयालु भगवान मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त करे।

उन्होंने एक अन्य अवसर पर लार्ड नार्थ ब्रुक से अजमेर में आयोजित विदाई समारोह में कहा था—आप लन्दन पहुंच कर महारानी विक्टोरिया से कह दें—यदि भारतीयों के धार्मिक जीवन में शासन इसी प्रकार हाथ डालता रहा और गाय जो भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ और सांस्कृतिक जीवन की प्रतीक है, उसका वध जारी रहा तो 1857 की क्रांति भी दोहराई जा सकती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानवमात्र के कल्याण के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की तथा अन्य अनेक ग्रंथों की भी रचना की।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया। उन्होंने कृषि तथा गौ आदि पशुओं के सरक्षण के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने एक संस्था "गौ कृष्यादि रक्षिणी सभा" बनाई। इसके संविधान की प्रस्तावना की पहली पंक्ति है—"जिससे गवादि पशु और कृष्यादि कर्मों की रक्षा और वृद्धि होकर सब प्रकार के उत्तम सुख मनुष्यादि प्राणियों को प्राप्त होते हैं।' महर्षि दयानन्द सरस्वती ने एक पुस्तक 'गौ करुणा निधि' लिखी जो पहली बार संवत् 1937 चैत्र अर्थात् सन् 1880 में प्रकाशित हुई। इसके आवरण पृष्ठ पर अंकित है—

गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों के सुख के लिए।
अनेक सत्पुरुषों की सम्मति से आर्य भाषा में बनाया है॥
इसके अनुसार वर्तमान करने से संसार का बड़ा उपकार है।

महर्षि दयानन्द ने इस ग्रन्थ में गाय को भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार माना है। वे गाय के साथ बैल, भैंस, ऊँट-ऊँटनी, बकरा-बकरी, भेड़-भेड़ी आदि की उपयोगिता पर भी विचार करते हैं। उनका कहना है कि ये पशु जीवन भर घांस-फूस खाकर आदमी की सेवा करते हैं और मर कर भी आदमी के काम आते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने रिवाड़ी में स्वयं गौशाला की स्थापना की थी। संभवतः आधुनिक युग में यह भारत की सबसे पहली गौशाला थी जिसे सार्वजनिक हित की दृष्टि से स्थापित किया गया था।

—डॉ धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 26-5-91)

पर्यावरण प्रदूषण समस्या का वैदिक समाधान

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।
यजु: 36/3

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ।। यजु: 30/3

ये दोनों सुप्रसिद्ध वेदमन्त्र सूर्य की महत्ता का वर्णन करते हैं। आराधक मानता है कि सूर्य के पास ऐसी शक्ति है जो हमें कुछ दे सकती है। एक अन्य वेद की ऋचा है—

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभि: ।। अथर्व 4/30/15

अधिष्ठाता सूर्य अपनी प्रखर किरणों से तुम्हें मृत्यु से बचाए। एक अन्य मन्त्र का हम प्रति दिन पाठ करते हैं—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा (यजु० 9/42)

सूर्य इस संसार की आत्मा है। यह आध्यात्मिक रूप से तो सत्य स्वीकृत है ही, वैज्ञानिक रूप से भी सत्य है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र भी सूर्य की किरणों को महोषधि मानता है। सूर्य हमें ऊर्जा और स्वास्थ्य देने वाला है। पर यह कब तक हमें ऊर्जा और स्वास्थ्य देने वाला बना रहेगा, यह बात विचारणीय है। मनुष्य अपनी करतूतों से ऐसी परिस्थितियां पैदा करता जा रहा है कि सूर्य हमारा आराध्य देव नहीं बल्कि शत्रु बन जाएगा। वह मनुष्य की रोगों से रक्षा नहीं कर सकेगा, बल्कि मृत्यु की ओर ले जाएगा। सूर्य की किरणें कैंसर जैसे भयंकर रोग अपने साथ लाएंगी। आदमी की रोग से लड़ने की क्षमता नष्ट हो जाएगी। गर्मी बेहद बढ़ जाएगी। पहाड़ों की बर्फ पिघल कर समुद्र तल को बढ़ाएगी। रेत का साम्राज्य बढ़ जाएगा। कुएं सूख जायेंगे। लोग शहर को छोड़कर जंगलों की ओर भागेंगे। यह कल्पना बहुत ही भयावह है। सूर्य तो हमारा रक्षक है, वह ऐसा क्यों करेगा? वह ऐसा करेगा, क्योंकि मानव अहंकार में चूर है। वह प्रकृति और पर्यावरण से खिलवाड़ कर रहा है। हवा और पानी में विषैली गैसें झोंकी जा रही हैं। हर कार्य का यन्त्रीकरण हो गया है। शहरों में बिना कूलर, हीटर, बिजली रेफ्रीजरेटर, एयर कण्डीशनर जीवन की कल्पना करना असम्भव हो गया है। वृक्ष अन्धाधुन्ध काटे जा रहे हैं। वृक्ष लगाए नहीं जा रहे हैं। यज्ञों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। आधुनिकता और विकास

के नाम पर जो बांध बनाए जा रहे हैं, वही जान लेवा हो गए हैं। ऋतुचक्र अव्यवस्थित हो गया है। हाइड्रोजन तथा अन्य एटमी बम सारे वातावरण को विषाक्त कर रहे हैं। वर्षा कभी भी हो सकती है या कभी भी नहीं हो सकती। धरती का तापमान बढ़ गया है। दक्षिणी ध्रुव के पास ओजोन में छेद हो गया है। यह ओजोन हमारी सूर्य की अनिष्टकारी किरणों से रक्षा करता है।

इस भयावह चित्र का निदान सम्भव है। सम्पूर्ण संसार के मानवशास्त्री इस कार्य के लिए प्रयत्नशील हैं। संसार के अति प्राचीन ज्ञान ग्रन्थ वेदों में भी इसके निदान का संकेत है। परन्तु इसके लिए हमें परिश्रम करना पड़ेगा। निष्ठापूर्वक वैदिक आदेशों का पालन करना होगा। यदि तर्क तथा इच्छा शक्ति से काम लें तो इनका निदान कठिन नहीं है: परन्तु हमारे प्रयास विश्वजनीन होने चाहिएं। भारत में पिछले दस वर्षों से वन तथा पर्यावरण की ओर ध्यान गया है, जबकि इनकी ओर हमारा ध्यान बहुत पहले जाना चाहिए था।

वेदों में आदर्श राष्ट्र का स्वरूप राष्ट्रीय प्रार्थना में वर्णित है। उसमें जो साधन हैं, उनमें पर्यावरण से सम्बन्धित बातें इस प्रकार हैं—निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।। यजु:० 22/22

हमारी कामना है कि समय पर ठीक वर्षा हो। यह तभी सम्भव है जब राज्य में उत्तम प्रजा हो और यज्ञादि शुभ कर्म किए जाएं। यह सर्वसम्मत स्वीकृत तथ्य है, कि यज्ञादि शुभकर्म होंगे तो मेघमण्डल शुद्ध होकर समय पर वर्षा भी होगी, अतिवृष्टि व अनावृष्टि से हमारी रक्षा होगी परन्तु हमतो इसके विपरीत कर्म कर रहे हैं। कोयले और बिजली के कारखानों से निकलने वाली गैस हमारे वायुमण्डल को समाप्त कर रही है। जिससे विविध रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः हम यज्ञ करें इससे हमारी रक्षा होगी। यज्ञ विधान में इस बात का वर्णन आता है कि विशेष वनस्पतियां डालने से, विशेष रोग से पीड़ित लोगों को लाभ मिलता है। उस विषय में गुग्गल को बहुत महत्व-पूर्ण माना गया है। राष्ट्र की अगली आवश्यकता है कि वनस्पतियां, फल-मूलादि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हों। जो फलाहारी और शाकाहारी हैं वे दीर्घायु होते हैं। वनस्पतियां, वृक्ष आदि भू-क्षरण को रोकते हैं, जलप्लावन को रोकते हैं और वायुमण्डल को शुद्ध करते हैं। हमें वन्य पशुओं की भी रक्षा करनी चाहिए। वेद का आदेश है—मा हिंसीः पुरुषं जगत्। प्राणी जगत् का विनाश मत करो। आज वनों में नये पेड़ जो स्वतः पैदा हो जाते थे, नहीं हो रहे हैं, इसका कारण यह है कि वृक्ष से गिरने वाला बीज जो वन्य पशुओं के खुरों से जमीन में दब कर अंकुरित होता था, वैसा नहीं हो रहा है। देवदार के बीज के लिए यही कठिनाई है।

यज्ञ द्वारा पर्यावरण शोधन के तो अनेक उदाहरण प्राप्य हैं—शन्नो वातः पवताम् (यजु० 36/10) यज्ञ से सुखकारी वायु चलने लगती है। हम प्रति दिन यज्ञ प्रार्थना में बोलते हैं—लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए। वायु, जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किए। शमु सन्तु यज्ञः—यज्ञ हवन, कल्याणकारी हों। शं नः ईषिरो

अभिवातु वात:—चारों ओर सुखदाता वायु का प्रवाह चले। शं न: औषधिर्वनिनो भवन्तु—वृक्ष वनस्पतियों का वन्य रूप हमें सुखकारी हों। गोघृत को विषनाशक शक्ति से युक्त माना गया है। आज भी गांव-देहात में सर्प-काटे व्यक्ति को घी पिला दिया जाता है। अग्नि के मेल से तो घी की शक्ति और बढ़ जाती है, जैसे छौंक द्वारा चारों ओर सुवास फैल जाता है, अत: हमें यज्ञ करने चाहिएं। "यज्ञस्य देवमृत्विजम्" यज्ञ ऋतुओं का निर्माता है। ऋतु से वर्षा, वर्षा से वृक्ष और वृक्ष से भेषज बात—यह प्रक्रिया प्रदूषण को समाप्त करेगी। यज्ञाद् भवति पर्यन्य:—साथ ही यज्ञ वर्षा की वृद्धि भी करने वाला है। मेघ बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया है—वायु, धूम्र, अभ्र, मेघ। यही क्रम वेद में भी उपलब्ध होता है—वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा।
(यजु० 22/26)

द्यां मा लेखी, अन्तरिक्षं मां हिंसी: (यजु० 5/43) वैदिक ऋषि का ज्ञान "ओजोन" तक पहुंचा है, जब वह कहता है—द्युलोक और अन्तरिक्षलोक के विशाल क्षेत्र को विकृत मत करो। ओ३म् द्यौ शान्ति: अन्तरिक्षं शान्ति: (यजु० 26/17) इसमें भी यही बात कही गयी है। वेद में कृषक के लिए भी विद्वान होने की कामनाएं हैं। सुसस्या: कृषीस्कृधि (यजु० 4/10) हम उत्तम अन्नों की कृषि करें। हम भू संस्कार करें—पृथ्वी च मे यज्ञेन कल्पताम्॥

आवश्यकता इस बात की है कि पांचों महाभूतों में जो प्रदूषण है, उसको समाप्त करने के लिए प्रयास करें। इसलिए एक वैदिक समाधान है—हम वर्णाश्रम व्यवस्था का पूर्णत: परिपालन करें इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी तो जंगलों में ही रहेंगे, इसलिए वे प्रदूषण नहीं फैलायेंगे। गृहस्थी लोग यज्ञ करेंगे, जितना प्रदूषण वे फैलाएंगे, इसका निराकरण वे यज्ञों द्वारा करेंगे।

इस लेख में यह विस्तार सम्भव नहीं है कि पांचों महाभूत किस प्रकार विकृत होते हैं। उनसे क्या हानि है और उनका निदान कैसे करें पर यह निश्चित है कि वैदिक जीवनचर्या के द्वारा हम पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से निपट सकते हैं।

भारत की भूतपूर्व पर्यावरण विकास मन्त्री श्रीमती मेनका गांधी ने 'नीम' के वृक्षों को रोपने की बात कही थी। यह श्लाघ्य है। उन्होंने विभिन्न वृक्षों की जीवनी शक्तियों के विषय में एक पुस्तक भी लिखी है। यह विस्तार भी यहां सम्भव नहीं है। पीपल का वृक्ष पूज्य माना गया है। इसका वैज्ञानिक आधार है, क्योंकि यह सर्वाधिक आक्सीजन प्रदान करता है। अन्य वृक्षों के विषय में विभिन्न तथ्य प्राप्त हैं जो हमारे रक्षक हैं।

भारत के राष्ट्रपति श्री आर० वेंकटरमण ने 20 दिसम्बर 1989 को संसद के समक्ष भाषण में पर्यावरण को विशेष महत्व देने की बात कही थी। पिछले दिनों मेरठ के प्रभात आश्रम में इस विषय पर एक संगोष्ठी हुई थी और निर्णय लिया गया था कि सरकार को वैदिक समाधान सार रूप में भेजा जाएगा। वेद हमारी अमूल्य सम्पदा है जिनके आदेशों के परिपालन से हम सभी समस्याओं का मुकाबला कर सकते हैं।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 26-5-91)

एक गरिमामय व्यक्तित्व : राजीव गांधी

श्रीमती इन्दिरा गांधी के निधन से इस देश के सामने एक भयानक-सा निर्वात उत्पन्न हो गया था, परन्तु राजीव गांधी ने यद्यपि वे राजनीति में परिपक्व नहीं थे, श्रीमती गांधी के निधन के बाद राष्ट्र को अपनी सूझ-बूझ से सम्भाल लिया था। श्री गांधी ने राष्ट्र को स्थिर एवं अखण्डता प्रदान की। लोगों के मन का सन्देह कि हवाई जहाज चलाने वाला यह शर्मीला युवक क्या देश चला पाएगा, काफूर हो गया और उसने राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान किया, उसे विश्व के धरातल पर सम्मानजनक स्थान दिलाया।

अपने छोटे भाई श्री संजय गांधी के निधन के बाद वे राजनीति में आए थे। संजय आक्रामक राजनीति के प्रतीक थे, परन्तु राजीव के आयाम शान्त, सहज और भलमनसाहत से भरे थे। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्हें पार्टी की और देश की विश्वसनीयता प्राप्त होती गई। परिवार का बड़ा नाम तो उनके साथ था ही। वे कांग्रेस के महासचिव बनाए गए। यह कार्यकाल छोटा था, पर इस काल को भी उनकी कम्प्यूटरी व्यवहारिकता के आधार पर याद किया जाएगा। उनका चिन्तन अत्यधिक आधुनिक एवं व्यवहारिक था। उनके व्यवहार में कहीं पर भी निषेधात्मकता नहीं थी, जैसी कि उनसे पहले की पीढ़ी के लोगों में साम्राज्य विरोधी भावनाएं थी, उनके मन में और व्यवहार में तो सकारात्मक रचनात्मकता थी।

श्रीमती गांधी के बाद वे प्रधानमन्त्री बने। और तत्काल हुए चुनावों में उन्हें आशातीत भारी बहुमत मिला। राजीव गांधी ने घोषणा की कि वे मुठभेड़ के स्थान पर सामंजस्य की राजनीति करेंगे। हमारा देश श्रीमती गांधी की चीता शैली मोहक अदा पर फिदा था, पर नए नेता की नई भावनाओं का लोगों ने स्वागत किया। श्री गांधी ने सबसे पहला समझौता सन्त हरचन्दसिंह लोंगोवाल के साथ किया। इस समझौते का विरोध भी हुआ और समर्थन भी, पर श्री गांधी की मनचाही न हो पाई क्योंकि सन्त लोंगोवाल को ही उनके ही लोगों ने छीन लिया।

इसके बाद श्री गांधी ने लालकिला की प्राचीर से घोषणा की कि उन्होंने राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की खातिर असम के छात्र प्रतिनिधियों से समझौता किया

है। देश की अर्थव्यवस्था को चरमरा देने वाले इस समझौते से तसल्ली और शकून की लहर देश में फैल गई थी।

इन समझौतों का सम्भवत: वह परिणाम तो नहीं निकला जो वांछित था, परन्तु सारे देश को यह अवश्य पता चला कि श्री गांधी कुछ नया कार्य करना चाहते हैं। उनको आम जनता की स्वीकार्यता भी मिली। राजीव गांधी अपनी प्रतिभा और गरिमा के चरम शिखर की ओर बढ़ते जा रहे थे। उनके बारे में यही धारणा थी कि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले आधुनिक विचारों वाले युवा हैं जो राजनीति को ज्ञात दुर्बलताओं से मुक्त करके नया प्रकाशस्तम्भ बनाएंगे। पर उनकी इस अवधारणा को शाहबानो केस में बहुत बड़ा धक्का लगा। राजीव की ओर बोफोर्स शक की सुई भी उठी थी, पर इसका निर्णय होने से पहले ही कि क्या लोगों ने उनको उस शक से मुक्त कर दिया है, वे काल कवलित हो गए। आगामी चुनाव ही इसका निर्णय देंगे।

राजीव गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सहयोग एवं सद्भाव को संवर्धित करने वाले कार्य किए। उन्होंने अमेरिका से सम्बन्ध बनाए, गोर्बाचोव से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए, पाकिस्तान, चीन, और बांग्लादेश के साथ भी नए रिश्ते बनाने की कोशिशें हुई। नेहरू की चीन यात्रा के बाद राजीव की ही चीन यात्रा हुई। इन सबके कुछ ठोस परिणाम सामने आते, इससे पहले ही वे हमारे बीच से चले गये।

श्रीलंका के साथ समझौता करके उन्होंने अपनी ओर से तमिल समस्या को सुलझाने की ईमानदार कोशिश की थी। मालदीव में भारतीय सेना भेजी गई थी।

उन्होंने 'जवाहर रोजगार योजना' और 'पंचायती राज बिल' रखकर गरीबों के उत्थान के प्रति अपनी उत्सुकता और चिन्ता को रेखांकित किया। बाद की दोनों सरकारें उनके विरुद्ध कोई ठोस सबूत नहीं जुटा पाई।

राजीव गांधी का जन्म 20 अगस्त 1944 को हुआ था। वे अकाल ही 21 मई, 1991 को इस असार संसार से विदा हो गए। उनके लिए अभी करने को बहुत कुछ था। उनकी हत्या करके पाशविक वृत्तियों ने एक गरिमामय जीवन का अन्त कर दिया। इससे प्रजातन्त्र को भी खतरा है। उस महामानव के प्रति विनत श्रद्धांजलि।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 2-6-91)

धूम्रपान निषेध दिवस और दिल्ली प्रशासन

यह पढ़ कर अच्छा लगा कि दिल्ली प्रशासन के सभी कार्यालयों और संगठनों में सिगरेट आदि पीने पर पाबन्दी लगा दी गई है। परन्तु समस्या यह है कि क्या सरकार राजस्व को होने वाली हानि को सहन कर पाएगी ? ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रशासन की दोगली नीति है। एक बार यह पता चला था कि एक संस्थान के बड़े अधिकारी ने मद्य निषेध पर एक पुस्तक लिखी और उस पुस्तक के लिए धन जुटाने के लिए उसने मद्य विक्रेताओं से ही दान लिया। यह भी कोई गोपनीय तथ्य नहीं है कि कभी-कभी आन्दोलनों को चलाने के लिए भी धन जुटाने के ऐसे जन सम्पर्क अधिकारियों का सहयोग लिया जाता है, जिनके विरुद्ध आन्दोलन चलाया जाना है। एक बार एक बड़े नेता ने घोषणा की कि वे मद्य निषेध आन्दोलन चलाएंगे। उनसे उनके एक कनिष्ठ साथी ने पूछा कि इस आन्दोलनों के लिए धन कहा से जुटाएंगे, तो नेता जी तपाक से बोले—इसमें क्या मुश्किल है, हम सभी व्यापारियों से लाइसेंस देते समय कुछ पैसा तो अवश्य वसूल करते हैं, हम दो चार शराब के ठेके और दे देंगे तथा उससे जो रुपया मिलेगा, उससे आन्दोलन चलाएंगे। यह भी सभी को पता है कि प्रशासन का एक विभाग बड़े-बड़े पोस्टर निकालता है कि शराब बुरी चीज है और वही विभाग शराब पीने वालों के लिये परमिट भी जारी करता है। धूम्रपान के विरुद्ध भी प्रशासन बड़े-बड़े पोस्टर निकालता है। उन पर वैधानिक चेतावनी भी लिखी होती है, फिर भी सिगरेट बनाने वालों को कच्चा माल तथा ऋण सुविधा प्रशासन ही उपलब्ध कराता है। अनेक धर्म गुरु भी त्याग और तपस्या पर व्याख्यान देते हैं और अपना घर भरते जाते हैं।

चाहे जो हो, दिल्ली प्रशासन की यह घोषणा पढ़ कर मन को अच्छा लगा। आशा है कि इस घोषणा को क्रियान्वित भी किया जाएगा और कम से कम वे अधिकारी जो इस घोषणा से जुड़े हैं, वे तो सिगरेट पीना छोड़ ही देंगे। प्रशासन की विज्ञप्ति में कहा गया है कि कार्यालयों के बरामदे, प्रतीक्षा कक्ष, स्वागत कक्ष और सम्मेलन कक्ष आदि में भी धूम्रपान करने की मनाही है। इन स्थानों पर इस आशय की पट्टियां भी लगाई जाएंगी।

विश्व भर में 31 मई को 'तम्बाकू निषेध दिवस' मनाया जाता है। यह अच्छी

बात है, पर इसे मात्र औपचारिकता नहीं बनाया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक सभा का आयोजन भी किया गया जिसमें विश्व स्वास्थ्य संगठन के स्थानीय निर्देशक डा० कोको अध्यक्ष के रूप में और दिल्ली के उपराज्यपाल श्री मार्कण्डेय सिंह मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए। सभा में यह आम राय थी कि इस योजना को क्रियान्वित करने में डाक्टरों, सरकारी प्रतिनिधियों, स्वयं सेवी संगठनों और मीडिया से जुड़े लोगों को भी आगे आना चाहिये। सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान करने की मनाही होनी चाहिये, और व्यक्तिगत स्तर पर लोगों को समझाया जाना चाहिए।

आर्य समाज बहुत पहले से ही इस दिशा में जागरूक है। उन्हें और अधिक इस दिशा में सक्रिय हो जाना चाहिये।

सिगरेट के धुंए में वाष्पीकृत तारकोल, निकोटिन और हाइड्रोजन, साइनाइड कार्बन, मोनो आक्साइड और 200 से भी ज्यादा अन्य खतरनाक रसायन होते हैं। धूम्रपान करने वालों को तो नुकसान होता ही है, उनके परिवार पर भी इसका बुरा असर पड़ता है।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 9-6-91)

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' के अटल ईश्वरीय सिद्धान्त को विचार कर मनुष्य अपने को शुभ कर्मों में रत रखे और अशुभ कर्मों में कभी न फँसे।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

धर्म और उसका संकुचित अर्थ

धर्म का अर्थ व्यापक है और विस्तीर्ण भी परन्तु हम अज्ञानवश उसका प्रयोग सीमित अर्थ में करते हैं और उसके विस्तार को भी बहुत ही संकुचित कर देते हैं। वैदिक अवधारण को समझा पाना और धर्म की सच्ची पृष्ठ-भूमि को समझ लेना सामान्य व्यक्तियों के लिये कम और विद्वानों के लिए अधिक कठिन हो गया है। यदि हम चाहते हैं आज के विखण्डन और अविश्वास के अन्धकार को दूर करें तो हमारा कर्त्तव्य है कि धर्म को हम व्यापक और विशद अर्थ में ही ग्रहण करें। धर्म का मुख्य अर्थ है—जो जीवन को धारण करे। सरल शब्दों में कहें तो धर्म वह है जो हमारे जीवन को संभाल कर रखे। धर्मशास्त्र जीवन की एक पूजा पद्धति ही नहीं है बल्कि यह तो एक व्यवहार पद्धति है। धर्म को प्राप्त करने के लिए जीवन को जीना, जीवन को पूरे मन से स्वीकार करना और जीवन की सार्थकता को पहचानना अनिवार्य है। जीवन की सार्थकता मनुष्यता के अभाव में है। वेद सर्वत्र धर्म की संकुचित परिभाषाओं से ऊपर उठकर सबको यही आदेश देता है कि तुम मनुष्य बनो। यह मनुष्य भाव ही जीवन की सार्थकता है। मनुष्य भाव अपेक्षा करता है कि सबके भाव को अपना भाव माने। इस भाव से कटना नृशंसता है। यह मनुष्यता की जघन्य हत्या है। जो इस भाव से मुक्त हो जाता है, वह ही सच्चा धार्मिक है और उसका भाव ही चरम धर्म है।

धर्म का दूसरा पक्ष है सहज होना। धर्म प्रदर्शन नहीं है। धर्म आरोपित नहीं होता, धर्म वह है जो मनुष्य के अन्दर होता है। मनुष्य का विवेक उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। अपने में डूबता है तो सोचता है कि मेरे भीतर के आदमी को क्या अच्छा लगता है। धर्म का यह सिद्धान्त है कि वे दूसरों के साथ वैसा ही व्यबहार करे जैसे व्यवहार की वह दूसरे से अपने लिए अपेक्षा करता है। सत्य असत्य के निर्णय में भी इसी विवेक का सहारा लिया जाता है। महाभारत में एक धर्मव्याध की कथा आती है। जिसमें बताया गया है कि शिकार करने वाला वह व्याध भी धार्मिक है। क्योंकि वह अपना काम पूरा करने के बाद घर जाकर नहा धोकर वृद्ध माता-पिता की सेवा करने के पश्चात् घर के पशुओं तक की चिन्ता करता है। दूसरी ओर ब्राह्मण विश्राम करते-करते, अच्छा भोजन करते हुए, हर तरह की आवभगत होने के बावजूद ऊब जाता है, झल्ला उठता है और गुस्सा करता है। अब आप ही देखिए धर्म कौन-सा है, धर्म सहज ही कर्म है। नदी बहती है, हवा बहती है, सांस चलती है, वह सब धर्म है। इसी तरह जो आदमी सहज रूप से काम करता है, वह धर्म है। जो कुछ दिखावे के लिए काम करता है, वह धर्म नहीं है।

धर्म का तीसरा पक्ष है गतिशीलता। वेदों में दो शब्द आए हैं, ऋत और सत्य इन दोनों का मिला-जुला रूप ही धर्म है। ऋत का अर्थ है गति और सत्य का अर्थ है सत्ता में बने रहना। गति ऐसी न हो जो स्वरूप की पहचान को नष्ट कर दे। बने रहने का अर्थ यह नहीं है कि टिक जाये, ठहर जाये और सड़ जाये। अतः जो न टिके, जो न सड़े, जो चलता रहे और जो अपने स्वरूप को भी सम्भाले रखे वह धर्म है। इन तीनों पक्षों को यदि हम समझ लें तो हमें कोई दुविधा न रहेगी। और यही धर्म उस मानव मात्र का है। जो सम्पूर्ण जीवन को सम्भाल कर रखे वह धर्म है। जो सहज हो और आरोपित हो वह धर्म है जो सत्य और ऋत का समन्वित रूप हो वह धर्म है।

आज के मनुष्य में धर्म के इस वैदिक स्वरूप को, इस विशाल स्वरूप को बहुत ही संकीर्ण बना दिया है जबकि वैदिक धर्म की अवधारणा पूर्ण मनुष्यता के कल्याण में निहित है। मनु के द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षण उसी वैदिक धर्म की व्याख्या है।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 16-6-91)

शरीर रक्षा के लिए धन को न्यौछावर कर दो, आत्म-कल्याण के लिए शरीर और धन दोनों को न्यौछावर कर दो। इसी में मनुष्य की बुद्धि की चतुराई है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

परमेश्वर देवों का देव होने से 'महादेव' इसलिए कहाता है कि वह सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश अधिष्ठाता है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आतंकवाद का दुस्साहस

भारतवर्ष के सीमान्त प्रदेशों में आतंकवाद का विषधर फण उठाये खड़ा है। यह समझ नहीं आता कि रेलयात्रियों की नृशंस हत्या करके उन्हें क्या मिल जाता है। उग्रवाद की यह परिधि प्रारम्भ में सम्बन्धित नेताओं एवं अधिकारियों तक सीमित थी। अब इसका दायरा बढ़ता जा रहा है। आतंकवादियों का दुस्साहस बढ़ता ही जा रहा है। उनके आदेश प्रकाशित प्रचारित किए जाते हैं। पहनावे का वे निर्देश देते हैं। क्या बोलें, और कैसे बोलें अथवा किस भाषा में बोलें, बोलते समय स्वर का अनुतान कैसा हो, इसका निर्देश भी वही देते हैं। हमारी सरकार क्या कर रही है ? हमारे सुरक्षा बल क्या कर रहे हैं ? देश के प्रधानमन्त्री की हत्या हो सकती है। सब से बड़ी पार्टी के नेता की हत्या हो सकती है। फौजी जनरलों की हत्या होती है। पुलिस अधिकारियों की हत्या होती है। सूचना प्रसारण के अधिकारियों पर दिन दहाड़े गोलियां बरसाई जाती हैं। विवाह शादियों के अवसरों पर लोगों को भून दिया जाता है। अखबारों के कार्यालयों में पार्सलों से बम भेजे जाते हैं। पिछले दिनों तो मानव बम का भी प्रयोग किया गया।

इन आतंकवादियों से बातचीत का सिलसिला भी अनेक बार शुरू किया गया है, परन्तु क्या मिला। क्या ऐसी शर्त नहीं हो सकती कि वे पहले हिंसा त्याग दें, उसके बाद बातचीत हो सकेगी। काश्मीर, पंजाब, आसाम, नागालण्ड, बोडों, झारखंड, तमिलनाडु आन्ध्र प्रदेश कौन-सी जगह बची है, जहां पर यह आतंकवाद नहीं है। यह सामान्य नियम है कि हताश व्यक्ति अन्तिम हथियार का भी प्रयोग करता है। नैतिक पराजय हमेशा बौखलाहट पैदा करती है। इस सब पर काबू पाने के लिये एक समझदार मजबूत इरादों वाली सरकार की जरूरत है।

इस समय देश में राष्ट्रीय निर्वाचनों के परिणाम आ रहे हैं, पर लगता है कि कोई एक पार्टी सरकार नहीं बना पायेगी। इसलिए कार्यक्रम भी खिचड़ी बनेंगे। किसी भी एक के नाराज होने से सरकार टूटेगी। मजबूत कदम कोई भी सरकार नहीं उठा पाएगी। कदम मजबूत नहीं होंगे, तो उच्छृंखलता बढ़ेगी।

आज देश में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने की आवश्यकता है। इसी से एकता और सद्भाव कायम हो सकेंगे।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 23-6-91)

राष्ट्रीय एकता और अखंडता की समस्या भयावह

गत सप्ताह राजनैतिक गतिविधियों का सप्ताह रहा है। जब से राष्ट्रीय निर्वाचन के परिणाम आने प्रारम्भ हुए थे; यह स्पष्ट होने लगा था कि संसद में किसी भी पार्टी का बहुमत नहीं आ पायेगा, परन्तु सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस ही रहेगी। पिछली संसद में भी सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस ही थी, परन्तु उस समय की, और इस समय की परिस्थितियों में अन्तर आ गया। उस समय कांग्रेस हारी थी, अब की बार कांग्रेस जीती है। यह एक बहुत बड़ा अन्तर है। अब कांग्रेस के नेता कहें कि हम विपक्ष में बैठेंगे, जैसा कि पहले उन्होंने कहा था, किसी भी प्रकार सार्थक मूल्य नहीं रखता। अतः यह आवश्यक लगने लगा था कि कांग्रेस को ही सरकार बनानी चाहिए। सप्ताह पूरा होते-होते कांग्रेस ने केन्द्र में अपनी सरकार बना ली है। विपक्ष में राष्ट्रीय मोर्चा और भाजपा है। यह निर्वाचन भाजपा के लिए विशेष उपलब्धियां संजोकर लाया है। इस समय भाजपा राष्ट्रीय पार्टी है। उसे केरल और असम जैसे सुदूर प्रान्तों में भी लोक-सभा में प्रतिनिधित्व करने का अवसर इस बार मिला है। वे दिल्ली में भी अपने गढ़ को ढहने से बचाने में समर्थ हुए हैं। यह बात अलग है कि कुछ ऐसे महारथी हार गए हैं जिनसे उन्हें और उनकी पार्टी को आघात लगा है।

प्रधान मन्त्री बनने के बाद, श्री पी० वी० नरसिंह राव ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में अपने कार्यों की प्राथमिकताओं को रेखांकित किया है। इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि उनके सामने अनेक समस्याएं हैं। राष्ट्रीय एकता और अखंडता की समस्या संभवतः सर्वाधिक भयावह है। साम्प्रदायिक उन्माद भी देश में इस समय कम नहीं है। देश का आर्थिक ढांचा डांवाडोल है। उसे अनेक कर्ज लेने हैं, पर उसके लिए साख चाहिए। इस साख की रक्षा करनी है। देश में वर्ग संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। संस्कृति का अधःपतन हो चुका है। अब श्री नरसिंह राव के कन्धों पर यह भार आया है कि वे जिस तरह भी हो इसे पार ले जाएं। यह बात भी उल्लेखनीय है कि यह समस्या पिछले डेढ वर्षों के गैर कांग्रेसी शासन के कारण ही नहीं है, बल्कि इसके बीज-बिन्दु काफी पहले से पनपते आए हैं और अब ये समस्यायें पुष्पित पल्लवित हो चुकी है।

श्री राव कुशल प्रशासक हैं। शिक्षाविद् हैं। उनका विभिन्न विभागों को सफलतापूर्वक संभालने का अनुभव भी पर्याप्त लम्बा है। हमें आशा है कि वे इस देश को सही रास्ते पर ले जाएंगे। सभी देशवासी इस भूमि के प्रति, इस देश के प्रति, इस राष्ट्र के प्रति समर्पित होंगे। वे इस भारत भूमि के पुत्र हैं। यह उनकी माता है। यह रिश्ता ही हम सभी को एक सूत्र में जोड़ने में सफल हो सकता है।

—डा० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 30-6-91)

हमारा लोकतन्त्र

हमारे देश की राजनीति का यह स्वच्छ पक्ष है कि यहां पर नियमित रूप से निर्वाचन हो रहे हैं। पिछले चालीस वर्षों से यहां पर नियमित रूप से निर्वाचन होते रहे हैं। केवल दो अवसर अवश्य ऐसे आए हैं, जब हमारे राष्ट्रीय नेताओं के मन में निर्वाचन न कराने की भावना जागी थी। पहली बार तो ऐसा उस समय हुआ था जब देश में आपातकालीन स्थिति बनी थी, दूसरी बार इस वर्ष परन्तु लोकतन्त्र के दबाव ने ऐसा नहीं होने दिया। राष्ट्रीय नेता तो चाहते थे कि निर्वाचन स्थगित हो जाए, परन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पायी। राष्ट्रीय नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति करने में अवश्य सफल हो गए कि कोई सांसद भले ही कितने भी थोड़े समय के लिए रहा हो, उसे सभी सुविधाएं—पेंशन, भत्ता, मेडीकल, यात्रा आदि की सुविधाएं पूरी मिलें।

समय पर चुनाव होना अच्छी बात है, पर समय से पहले होना तो अच्छी बात नहीं मानी जा सकती। इसमें अन्धाधुंध रुपया खर्च होता है। यह ठीक है कि इसमें बिना हिसाब वाला रुपया खर्च होता है, पर इससे देश की अर्थ व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव तो पड़ता ही हैं। निर्वाचन के कारण जातिवाद व साम्प्रदायिकता का नंगा नाच सामने आता है। राजनेता सम्भवतः अपने आचरण और घोषणाओं के बल पर जीतने की अपेक्षा, विरोधी पक्ष की कमियां बताकर उनके चरित्र का हनन करके जीतना चाहते हैं। वे जनता की साम्प्रदायिक जातीय एवं क्षेत्रीय भावनाओं को ज्यादा उभारते हैं। इससे वैमनस्य का वातावरण बनता है। चारों ओर ईर्ष्या द्वेष और घृणा का दहकता लावा फैलता है और जो भाग नहीं सकते, या जो सरल चित्त हैं, वे उसकी चपेट में आ जाते हैं। आसाम अथवा उसकी सात बहनें सभी ने विद्रोह किया परन्तु उन्हें किसी-न-किसी प्रकार दमन करके या समझौता करके शान्त कर दिया गया, पर पंजाब का मसला अभी भी अनिर्णीत है। रोज हत्याएं हो रही हैं। राष्ट्र विरोधी शक्तियों के साथ, विदेशी शक्तियां भी उनकी हमजोली बनी हुई है। सहमति का स्थान चालाकी ने ले लिया है। जब कभी आपसी समझौते की बात आती है, तो सभी कनखियों से राष्ट्रीय सहमति करते दृष्टिगत होते हैं।

क्या यह बात राजनीति तक सीमित है। यह विष सामाजिक धार्मिक संगठनों तक फैल गया है। यहाँ भी राजनैतिक चरित्र के व्यक्ति मौजूद हैं। वे यहां पर भी वही दांव पेंच चलाते हैं। यहाँ पर नेताओं और अध्यक्षों के चरित्र हनन के कुत्सित प्रयास किए जाते हैं। यहां पर भी वैमनस्य का लावा सभी को लीलता जा रहा है। यहां पर

भी पृथकतावादी शक्तियां जोर जमाती नजर आती हैं। सभी अपनी अलग-अलग क्षेत्रीय विकास पार्टी संगठन बनाने में लगे हैं। निश्चय ही इससे पहला और बड़ा संगठन कमजोर होता है। यदि सभी अपने अलग-अलग संस्थान, मठ, और आश्रम बनाने की अपेक्षा, मुख्य धारा में आ जाएं, तो इन संगठनों का भला हो सकता है और फिर ये संगठन राष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित कर सकने की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्'—रोज कहते हैं, पर आचरण, इसके विपरीत करते हैं।

—डा० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 7-7-91)

मनुष्य को सदा शुभ कर्मों का पुरोगम सामने रखना चाहिए ताकि दुर्गुणों का कभी प्रवेश हो न हो सके क्योंकि सूने को सब सताते हैं।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबको कामना के योग्य है इसलिए उस ईश्वर का नाम 'प्रिय' है।

जो आपसे आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उससे उस परमात्मा का नाम 'स्वयम्भू' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार का जन्म कमालिया में श्री लक्ष्मणदास के घर में हुआ। आपने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सन् 1922 में विद्यालंकार तथा 1923 में सिद्धान्तालंकार की उपाधि प्राप्त की। वहीं पर आप अध्यापक भी रहे। कुछ समय आपने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में भी अध्यापन कार्य किया। आपका अधिक समय दिल्ली में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में बीता। आप आजन्म ब्रह्मचारी रहे। आप अच्छे व्याख्याता एवं लेखक हैं। आप संस्कृत व्याकरण के स्वनामधन्य पण्डित और वेदों के उद्भट विद्वान है। आपने चारों वेदों का भाष्य किया है।

आपको आर्य समाज शान्ताक्रुज बम्बई ने 1990 में वेद-वेदांग पुरस्कार से सम्मानित किया था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने इसी वर्ष 13 अप्रैल, 1991 को विश्वविद्यालय की सर्वोच्च मानद उपाधि विद्यामार्तण्ड से विभूषित किया था।

आपके प्रमुख लेखकीय कार्य है—संध्या मन्त्र विशेष व्याख्यान (1950 ई०), प्रार्थना मन्त्र, ईशोपनिषद् व्याख्या, सामवेद भाषा भाष्य (2029 वि०), सामवेद: उपासना-1 से 16 मन्त्र पर्यन्त (2012 वि०), प्रभु के चरणों में (2032 वि०), ऋग्वेद के ऋषि (1955 ई०), वैदिक परिवार व्यवस्था (2013 वि०), ऋग्वेद भाष्य—भगवती प्रकाशन दिल्ली से खण्डश: प्रकाशित।

वेद हमारी संस्कृति के मूलाधार हैं। वेद परमात्मा की दिव्य वाणी है। वेद हमारे प्राण और जीवन का सर्वस्व है। समय के साथ-साथ संसार ने वेद के मर्म को, वेद के सन्देश को भुला दिया। 19वीं शताब्दी में आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद का पुन: प्रचार-प्रसार किया।

'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'

इस आदेश का महर्षि के अनुयायियों ने पालन किया। पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार ने भी इस दिशा में कार्य किया। उन्होंने चारों वेदों का अत्यन्त सरल भाषा में भाष्य किया। उन्होंने कठिन समझे जाने वाले वेदों को सरल बना दिया। उन्होंने चालीस वर्ष तक कठोर साधना करके वेदों का भाष्य लिखा।

आज पंडित जी इस संसार में नहीं हैं। उनका दिया प्रकाश हमारे साथ है। हमारा कर्त्तव्य है कि इस प्रकाश को हम दूर-दूर तक फैलाएं। उनके दिए ज्ञान को प्रकाशित-प्रसारित-प्रचारित करें।

श्रद्धेय पंडित जी के प्रति विनत श्रद्धांजलि।

—डा० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 14-7-91)

आर्य लेखक कोश

पिछले दिनों आर्य लेखक कोश का प्रकाशन हुआ है। आर्य समाज के सभी लेखकों का परिचय देना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह कार्य ऐतिहासिक है, इसलिए इसकी गरिमा का आकलन किया जाना, अपने आप में एक विशिष्ट अनुभूति एवं स्फुरण प्रदायक है। ज्यों गूंगे को गुड़ मन ही भावे। इसकी महत्ता का प्रतिपादन शब्दों के द्वारा असम्भव-सा लगता है।

डा० भवानीलाल भारतीय आर्य समाज के सुप्रसिद्ध, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान, विचारक, व्याख्याता, सम्पादक लेखक एवं गवेषक हैं। उन्होंने दीर्घकाल तक साधना करके इस सामग्री को संकलित किया तथा इस महान् ग्रन्थ को पाठकों को भेंट किया।

इस ग्रन्थ में उन्होंने लगभग 1200 दिवंगत एवं वर्तमान आर्य लेखकों का सम्यक् परिचय दिया है। जीवन परिचय के साथ उनके लेखन के प्रतिपाद्य एवं उनकी शैली का विवेचन, इसे विशिष्ट आभा प्रदान करने में सक्षम है।

पं० लेखराम का आदेश—'आर्य समाज में तहरीर और तकरीर का काम बन्द नही होना चाहिए' निश्चय ही उनके लिए आदर्श रहा है। यह प्रसन्नता की बात है कि डा० भवानीलाल भारतीय ने इस महत्त्वपूर्ण एवं श्रम साध्य कार्य को दक्षतापूर्वक पूरा किया है।

इस कोश में वेदभाष्यकारों ब्राह्मण ग्रन्थों के व्याख्याकारों, उपनिषदों के टीकाकारों, रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रन्थों, दर्शनों तथा अन्य प्राच्य विद्या के ग्रन्थों की विवेचना करने वालों का भी सुस्पष्ट विवरण दिया गया है।

इस कोश में महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्य समाज के विभिन्न पक्षों को लेकर किए गए शोध प्रबन्धों का भी परिचय दिया गया है।

यह कोश आर्य समाज की तो धरोहर है ही, यह ग्रन्थ आने वाली पीढ़ियों के मार्ग को भी प्रकाशित करता रहेगा।

डा० भवानीलाल भारतीय को शतशः बधाई।

—डा० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 21-7-91)

दोराई स्वामी की रिहाई

सरकार पर्याप्त समय से यह प्रयास कर रही है कि भारतीय तेल निगम के कार्यकारी निर्देशक दोराई स्वामी को काश्मीर के जगजुओं से रिहा करा लिया जाए। परन्तु वह अभी तक भी अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाई है। अपहर्ताओं ने उनके रिहा किए जाने की समय सीमा को अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ा दिया है और हमारे सरकारी अधिकारी अपहर्त्ताओं से सन्तोषजनक जवाब की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पिछली कुछ घटनाएं इस बात की सशक्त प्रमाण है कि अपहरणकर्त्ताओं के सामने सरकार को झुकना पड़ा है। यह नीति है। यह राजनीति है। पिछले गृह मन्त्री की बेटी को रिहा कराने के लिए कुछ आतंकवादियों को रिहा किया गया था। आन्ध्र में एक केन्द्रीय मन्त्री के पुत्र को रिहा कराने के लिए कुछ अपहरणकर्त्ताओं के साथियों को रिहा किया गया था। पंजाब के सम्बन्ध में समझौतों के समय ऐसे लोगों को रिहा किया गया, जिनके कारण बाद में वातावरण में विषाक्तता और अधिक बढ़ गई हैं। जब असम का समझौता हुआ, तब भी तो यही हुआ था। सेठ के बेटे का अपहरण होता है तो अपहरणकर्त्ताओं को पैसा चाहिए। राजनेताओं अथवा उनके बेटे का अपहरण होता है, तो अपहरणकर्त्ता अपने बेटे या साथी बदले में मांगते हैं।

अब दोराई स्वामी के लिए क्यों इसी आधार पर कार्यवाही नहीं हो रही है। समस्या तो यह है कि इस बात की भी जानकारी नहीं है कि दोराई स्वामी सकुशल हैं अथवा नहीं। यह पता लगा है कि समझौता यह था कि दोराई स्वामी को रिहा करने के लिए तीन जंगजू पहले और दो बाद में छोड़े जायेंगे। पर अब जंगजुओं की सूची के कुछ नाम बदल गए हैं। कुछ गम्भीर आतंकवादियों को उस सूची में जोड़ा जा रहा है।

अब सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि समझौते की नीति में कोई परिवर्तन न किया जाए। और श्री दोराई स्वामी की कुशलता का पुष्ट प्रमाण मिले।

आश्चर्य है कि देश के हर कोने में स्थिति खराब होती जा रही है। सरकार कोई ठोस कार्य नहीं करती। आर्य समाज के सर्वोच्च नेता श्री स्वामी आनन्दबोध सरस्वती के सुरक्षा पट्टी निर्माण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिए जाने पर भी सरकार कोई सशक्त कार्यवाही नहीं कर पा रही है। यदि राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की रक्षा करनी है तो सरकार को ठोस कार्यवाही करनी ही होगी।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 28-7-91)

रूस में मार्क्सवाद की समाप्ति

पिछले दिनों रूस के राष्ट्रपति गोर्बाचोफ ने सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक तन्त्र में मौलिक परिवर्तन की बात बार-बार उठाई है। इससे यह स्पष्ट है कि जनता मार्क्स-वादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों के परित्याग के मार्ग पर अग्रसर है। उन्होंने सोवियत संघ को संवैधानिक दृष्टि से भी सामाजिक लोकतन्त्र में परिवर्तित करने की बात की है। वे कम्युनिस्ट पार्टी को भी मजदूर और सर्वहारा वर्ग की पार्टी के स्थान पर पूरी जनता की पार्टी बनाना चाहते हैं। भारत में जनता शब्द के लिए विशेष आग्रह है। अब यही भावना रूस में भी पुष्पित पल्लिवित हो रही है। एक बात जो बहुत ही महत्वपूर्ण है, वह है कि अब वहां पर निजी सम्पत्ति रखने और धर्म की स्वतन्त्रता का भी अधिकार मिलने की जोरदार वकालत की जाने लगी है। भारत में जो मार्क्सवाद का नाम लेते नहीं अघाते हैं, उन्हें यह बात समझ आ जानी चाहिए कि धर्म परायणता हमारी जीवन-शैली का एक अभिन्न अंग है। धर्म पूजा पद्धति से आगे बढ़ कर जीवन-शैली का एक मापक है। मनु महाराज की धर्म की व्याख्या-'धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मं लक्षणम्' एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है।

गोर्बाचोफ राजनेता के साथ-साथ नृविज्ञान के भी अध्येता हैं। वे समय की आवश्यकताओं को पहचानते हैं? इसलिए ये सभी परिवर्तन देश को स्थायित्त्व देने के लिए अपरिहार्य हो गए हैं। अपने अस्तित्त्व को बनाए रखने के लिए उन्हें एक ऐसे क्रान्तिकारी चिन्तन की आवश्यकता है।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 4-8-91)

भाषायी आन्दोलन

विद्वज्जन अभी तक साठ के दशक के उस भाषायी आन्दोलन को नहीं भूले होंगे जिसने समूचे सत्ता तन्त्र को हिला कर रख दिया था। पर आज संघ लोक सेवा आयोग के दरवाजे पर धरने पर बैठे, भारतीय भाषाओं के समर्थन में पताका उठाए, इन जज्बाती छात्रों की कोई नहीं सुन रहा है। ये नौजवान तीन साल से यहां बैठे हैं, पर पूरी तरह से नाकामयाब, अनसुने और उपेक्षित। इन तीन सालों में तीन सरकारें बदलीं—कांग्रेस, जनता दल, सजपा और फिर कांग्रेस। तीनों के नेताओं ने इन आंदोलनकारियों को आश्वासन भी दिए, पर सब बेकार। किसी भी पार्टी ने इनके विषय को अपने घोषणा-पत्र में सम्मिलित भी नहीं किया। इस आन्दोलन के नेता पुष्पेन्द्र चौहान संसद की दर्शक दीर्घा से नीचे सदन में कूद पड़े, अपनी पांच पसलियां तुड़वा बैठे, पर संसद के शोर में यह चटख दब कर रह गई। किसी ने कोई परवाह नहीं की।

आश्चर्य है कि इनकी मांगें उचित हैं, नहीं मानी जा रही, जबकि अल्फा और जंगजूओं की मान ली जाती हैं, या कम-से-कम उनसे बातचीत तो की जाती है। वे हिंसक हैं, ये अहिंसक। शायद अहिंसा का हथियार अपने ही देश में भोंथरा हो गया है।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 4-8-91)

जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'कवि' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

सामवेद भाष्य लोकार्पण समारोह

दिल्ली महानगर के सप्रू हाउस के सभागार में समर्पण शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित सामवेद भाष्य का लोकार्पण, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार [स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती] के जन्म दिवस पर, 1 अगस्त, 1991 को माननीय लोकसभा अध्यक्ष श्री शिवराज जी पाटिल के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, स्वामी आनन्दबोध सरस्वती, पं० क्षितीश वेदालंकार, आचार्य रामनाथ वेदालंकार, डा० मण्डन मिश्र एवं श्रीमती प्रभात शोभा पण्डिता के व्याख्यान हुए। विषय प्रवर्त्तन एवं संयोजन डा० धर्मपाल ने किया तथा समापन एवं धन्यवाद ज्ञापन सुश्री कुसुम लता आर्या ने किया। प्रोफेसर शेरसिंह ने मान्य विद्वानों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया। इस अवसर पर श्री सूर्यदेव, श्री दरबारी लाल, श्री रामनाथ सहगल, प्रो० प्रकाशवीर शास्त्री, श्रीमती कृष्णा चड्डा, श्री विनय चन्द्र मुद्गल, पं० जैमिनी शास्त्री, पं० महेन्द्र कुमार शास्त्री, आचार्य हरिदेव आदि गणमान्य आर्य जन उपस्थित थे।

समर्पण शोध संस्थान की स्थापना श्री स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती ने 1978 में की थी। गत 13 वर्षों में संस्थान ने 20 ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं और यह परम सन्तोष का विषय है कि इन ग्रन्थों के प्रणयन एवं प्रकाशन का आर्य जगत् ने सोत्साह स्वागत किया है। इन ग्रन्थों की भव्य सज्जा एवं विषय वस्तु ने सभी को आनन्दित एवं विमोहित किया है। स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती के इस वाक्य—'इस समय मौद्गल्य की आयु 70 वर्ष की हो गई है, शतपथ का भाष्य करना अभी शेष है। वह पूर्ण हो गया और जीवन शेष रहा तो चारों वेदों का भाष्य लिखेंगे। अन्यथा यह कार्य शिष्य परंपरा में कोई पूरा करेगा'—ने स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती को सदैव उद्वेलित एवं प्रेरित किया है। इसी का परिणाम यह सामवेद भाष्य है।

वेद आर्य जाति का प्राण है, उसका परम चक्षु है, उसका परम बल है, परम धाम है और है उसका परब्रह्म। प्रत्येक वेदभक्त भगवान वेदव्यास के शब्दों में कह सकता है—

वेदा मे परमं चक्षुः, वेदों में परमं बलम्।
वेदा मे परमं धामं, वेदा ब्रह्म चोत्तमम्॥

उपनिषद् का यह वचन महत्वपूर्ण है 'धर्मो विश्वस्य जगत : प्रतिष्ठा।' धर्मं सम्पूर्ण जगत की प्रतिष्ठा है, आधार है, मूल है। फिर प्रश्न उठता है कि धर्म का आधार क्या है ? 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' भगवान मनु ने कहा है कि सम्पूर्ण वेद, उसके मन्त्र,

यहां तक कि उसका एक-एक शब्द भी धर्म की प्रतिष्ठा है। अब प्रश्न उठता है कि वेद का आधार क्या है ? इसका समाधान महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया है—

'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।'

इसी आधार पर स्वामी जी महाराज ने इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथों में लिया। प्रस्तुत सामवेद का भाष्य विद्यामार्तण्ड श्री पं० रामनाथ जी वेदालंकार द्वारा किया गया है। इस भाष्य की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. यह भाष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती की शैली, संस्कृत और आर्य भाषा में उनकी विचार सरणि पर किया गया है।

2. विभिन्न भाष्यकारों द्वारा किए गए अर्थों का उल्लेख करके, उनका विवरण और पाद टिप्पणियों में निर्देश किया है।

3. यथा स्थान पदों की व्याख्या में निघण्टु, निरुक्तादि के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। यथावश्यक, पदों की पाणिनीय व्याकरणानुसार निष्पत्ति भी दर्शाई है।

4. सामवेद भाष्य की भूमिका, पठनीय एवं मननीय है। इसमें सामवेद विषयक पुष्कल जानकारी दी गई है। स्वराक+पद्धति, विविध पद पाठ, पद पाठ के स्वरूप आदि का विवेचन उल्लेखनीय है।

5. मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द, स्वर विषयक जानकारी, एक ही जगह उपलब्ध है। ऋषि मन्त्रदृष्टा हैं, मन्त्रकर्त्ता नहीं, इस आर्ष परम्परा को सप्रमाण पुष्ट किया गया है। वेद अपोरुषेय हैं। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर के अनुग्रह से मन्त्रों का लाभ करने वालों को ही मन्त्रकर्त्ता कहा गया है।

माननीय पं० जी के इस भाष्य को सुविज्ञ जन पढ़ेंगे और पण्डित जी की अभूतपूर्व विद्वता एवं भाष्य शैली से वे अवश्य ही चमत्कृत होंगे। पं० रामनाथ जी ने आर्य जगत के ऊपर यह महान उपकार किया है। श्रद्धेय पण्डित जी और पूज्य स्वामी जी के नीरोग दीर्घायु की कामना करते हुए, उन्हें इस सत्यकार्य के लिए हार्दिक बधाई।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 11-8-91)

आर्य समाज और भारतीय स्वाधीनता

आज हम कहते हैं कि हमारा देश आजाद है। इसे आजाद कराने में हमने अनेक कुर्बानियां दी हैं। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने जेल के सीखचों के पीछे भयावह कष्ट सहते हुए अनेक रात गुजारी हैं। उन्होंने जालिम अंग्रेजी पुलिस के डण्डे सहे हैं। इस आंदोलन में महिलाएं भी पीछे नहीं रही हैं। उन्होंने अनेक यातनाएं सही हैं। हम यह भी कहते हैं जहां इस आंदोलन में कांग्रेज का सर्व प्रमुख हाथ था, वहां पर दूसरी पार्टियाँ भी पीछे नहीं थी। पर सत्य तो यही है कि उस समय अनेक पार्टियां नहीं थीं। उस समय एक पार्टी थी और एक ही नारा था—सम्पूर्ण स्वाधीनता। उस समय हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई का भेद न था। वे सभी एक थे, उनका मार्ग एक था, उनका लक्ष्य एक था। कांग्रेस को प्राणवान बनाने में आर्य समाज का बहुत बड़ा हाथ था।

कांग्रेस की स्थापना शताब्दी मनाई गई। बम्बई, दिल्ली और अन्य स्थानों पर भव्य समारोह हुए। सभी ने आर्य समाज की भूमिका की प्रशंसा की। श्री सीताभि पट्टाभि रमैया ने कांग्रेस के इतिहास में लिखा कि कांग्रेस में आने वाले लोगों में अस्सी प्रतिशत आर्यसमाजी थे, आर्य समाज के लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आज भी जब कोई राम जन्मभूमि मुक्ति आन्दोलन का इतिहास लिखेगा तो उसमें भी आर्य समाज की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया जाएगा। देश में अनेक कोनों में स्वायत्तता के लिए आन्दोलन हो रहे हैं। जम्मू-कश्मीर, पंजाब, आसाम, तमिलनाडु, झारखण्ड और अन्य अनेक स्थानों के नाम गिनाए जा सकते हैं। ये आन्दोलन आजादी को कायम रखने के लिए हैं, अथवा मिली हुई आजादी को खोने के लिए? यह एक विचारणीय विषय है। प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी लालकिले पर राष्ट्रीय ध्वज लहराया फहराया गया। भारत के प्रधानमन्त्री ने अपना भाषण भी दिया। वे देश की समस्याओं का जिक्र भी किया और राष्ट्र को एकता एवं सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए देश का जनता का आह्वान भी किया। यह रस्म तो अवश्य पूरी की गई। पर इससे क्या आजादी बची रह सकेगी? ठीक है, हमारी आजादी को क्या खतरा है? पाकिस्तान हमारी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा है। चीन हमारा पुराना दोस्त है। बंगला देश में हमारे प्रधानमन्त्री को बुलाया जाता है। नेपाल के राष्ट्रीय कर्णधार हमारी ओर कृपा आशा की दृष्टि से देखते हैं, श्रीलंका को तबाह होने से हमने बचाया है। मालदीव के ऊपर हमारा बहुत बड़ा अहसान है। रूस हमारा मित्र है। वह स्वयं ही लड़खड़ा रहा है। अमेरिका कुछ देशों से नाराज है, तो वह हमारे साथ है। इसका मतलब यह हुआ कि हमारी आजादी को कोई खतरा बाहर से नहीं है। पर जब हम आपस में ही लड़ मरेंगे,

तो इस आजादी का क्या करेंगे। जब हम ही न रहेंगे, तो कौन राजा और कौन प्रजा? राजा अशोक कलिंग विजय के बाद रोए थे। वे रोए थे कि कहां शासन करें, आदमी तो सभी मर गए। केवल खण्डहर रह गए। अभी एक-दो दिन पहले श्री नरसिंह जी भी इसी प्रकार दु:खी हृदय से कह रहे थे कि अबकी बार नहीं तो कभी भी नहीं।

जन्म जाति, सम्प्रदाय, धर्म के नाम पर, भाषा के नाम पर, क्षेत्रीयता के नाम पर देश को बांटा जा रहा है। इस वर्ष संसद में शपथ ग्रहण समारोह का दृश्य देखने लायक था। इस दृश्य को सम्पूर्ण राष्ट्र को दिखाया जाना चाहिए था। वहां पर कुछ त्रिशूल लेकर पीले वस्त्रों में रामनामी दुपट्टा लेकर आए, कुछ हरे वस्त्रों में मोर के पंख सिर पर लगाकर आए, कुछ काले कपड़े पहने आए, कुछ ने लम्बी कृपाणें हाथ में ली और कुछ किसी अन्य वेशभूषा में। वहां नारे लग रहे थे—असम, तेलुगुदेशम्, रामचन्द्रन, खालिस्तान और झारखण्ड के। कोई नारा दे रहा था मन्दिर का और कोई मस्जिद का। राष्ट्र की एकता और अखण्डता का नारा देने वाला वहां कोई न था। हम बाहरी दुश्मन के खिलाफ तो एक हैं, पर आपस में लड़ रहे हैं। हम यादवी युद्ध लड़ रहे हैं।

हम अहिंसक आन्दोलन के जरिए आजाद हुए थे। स्वाधीनता आन्दोलन के योद्धाओं ने सोचा भी न था, कि भारतीय समाज की समरसता और एकता, इस प्रकार स्वप्न बन कर रह जाएगी।

हम आजाद हैं। हमें आजाद रहने के लिए चौकस रहना चाहिए। हम संगठन सूक्त का पाठ करें, एक हो, सभी को एक करें, अपना वर्चस्व कायम करें, तभी हम आजाद रह सकते हैं।

--डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 18-8-91)

जो कल्याण-स्वरूप और कल्याण का करने हारा है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'शिव' है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

युग पुरुष श्रीकृष्ण—एक आप्त पुरुष

"देखो ! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मृत्यु पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम परस्त्रियों से रास मण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीष्कृण जी में लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?"

ये उद्‌गार श्रीकृष्ण के प्रति आर्य समाज से प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में अभिव्यक्त किए हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण को आप्त पुरुष कहा है। आप्त पुरुष के लक्षण को बताने वाले वेद मन्त्र का अध्ययन यहां पर अभीष्ट है—

ओ३म् इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुचन्ति सोमं दधति प्रयाꣳसि।
तितिक्षन्तेऽभिशस्ति जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन् हि प्रकेतः॥
यजुर्वेद 34।18॥

पदार्थ—(इच्छन्ति) (त्वा) त्वाम् (सोम्यासः) सोमे ऐश्वर्यादिषु साधवः (सखायः) सुहृदः सन्तः (सुन्वन्ति) निष्पादयन्ति (सोमम्) ऐश्वर्यादिकम् (दधति) धरन्ति (प्रयांसि) कमनीयानि विज्ञानादीनि (तितिक्षन्ते) सहन्ते (अभिशस्तिम्) दुर्वचन वादम् (जनानाम्) मनुष्याणाम् (इन्द्र) राजन् ! (त्वत्) तव सकाशात् (आ) समन्तात् (कः) (चन) अपि (हि) (यतः) (प्रकेतः) प्रकृष्टा केता-प्रज्ञा यस्य सः॥

अन्वय—हे इन्द्र ! ये सोम्यासः सखायः सोमं सुन्वन्ति प्रयांसि दधति जनानामभिशस्तिया तितिक्षन्ते च तांस्त्वं सततं सत्कुरु। हि यतस्वत् प्रकेतः कश्चन नास्ति तस्मात् सर्वे त्वा त्वां मिच्छन्ति॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य आदि में श्रेष्ठ (सखायः) मित्रजन (सोमम्) ऐश्वर्य आदि को (सुन्वन्ति) निष्पन्न करते हैं (प्रयांसि) करने के योग्य विज्ञान आदि गुणों को (दधति) धारण करते हैं और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचनों को (आ + तितिक्षन्ते) सब ओर से सहन करते हैं, उनका तू सदा सत्कार कर। (हि) क्योंकि (त्वत्) तुझसे (प्रकेतः) उत्तम प्रज्ञा-

वाला (कश्चन) कोई नहीं है, अतः सब तुझे चाहते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य यहां निन्दा-स्तुति लाभ-हानि आदि को सहन करने वाले आप्त हैं, उनकी सब सेवा किया करें और उनका सत्कार किया करें। ऐसे आप्त पुरुष ही सब मनुष्यों के अध्यापक और उपदेष्टा होने चाहिए।

इस वेद मन्त्र के आधार पर आप्त पुरुषों के लक्षण निम्न हैं—

1. जो उत्तम प्रज्ञा वाले तथा उत्कृष्ट ज्ञानवान हैं।

2. जो समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न एवं ऐश्वर्य को सम्पन्न करने में परम पुरुषार्थ करते हैं।

3. जो राग द्वेष की प्रवृत्ति से रहित सबके हित की बात को निर्भयता से कहने से सबसे मित्र भाव रखते हैं।

4. जो कामना करने योग्य ज्ञान विज्ञान एवं सब गुणों को धारण करते हैं।

5. जो निन्दा-स्तुति, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को और दुर्जनों के कटुवचनों को सहन करते हैं तथा क्रोधाकुल होकर अपने बौद्धिक सन्तुलन को समाप्त नहीं करते हैं।

ऐसे महान् आप्त पुरुषों की सब हृदय से कुशलता तथा अभिवृद्धि की कामना करते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों को सदा ऐसे आप्त पुरुषों की ही सेवा तथा सत्कार करना चाहिये। वह राष्ट्र धन्य एवं भाग्यशाली होता है, जिसमें ऐसे आप्त पुरुष शिक्षा और उपदेश का कार्य करते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में आप्त पुरुषों का निम्न प्रकार लक्षण किया है—

"जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकार प्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष, जैसा अपना आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेषित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् जो पृथिवी से ले के परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है।"

यह अंक आप्त पुरुष भगवान श्रीकृष्ण के उपदेश को पाठकों तक पहुंचाने के लिए प्रस्तुत है। श्रीकृष्ण को भगवान क्यों कहा गया है, यह स्पष्ट करना भी यहां अभीष्ट है। राम, कृष्ण, महावीर और गौतम बुद्ध के साथ सामान्यतः भगवान शब्द का प्रयोग किया जाता है। भगवान शब्द से ईश्वर विषयक सन्देह होने लगता है। क्या वे परमात्मा हैं? यथार्थ जैसे बल वाले व्यक्ति को बलवान या धनवान कहा जाता है, उसी प्रकार भग सम्पन्न व्यक्ति को भगवान कहा जाता है। जो भग वाला है, वह भगवान है। संस्कृत भाषा में भग के निम्न छः अर्थ होते हैं—

ऐश्वर्यस्य, समग्रस्य, धर्मस्यः, यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ विष्णु पुराण

अर्थात् सर्वविध ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये छः अर्थ भग शब्द के हैं। जिस व्यक्ति में इन छः गुणों में से एक भी हो, वह भगवान कहलाने का

अधिकारी है। श्रीकृष्ण जी महाराज में तो ये सभी गुण विद्यमान हैं। अतः उन्हें इन्ही गुणों के कारण भगवान कहा गया है। भगवान यहां पर परमात्मा-वाची नहीं है। यह एक विशेषण शब्द है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण को आप्त पुरुषों के लक्षणों के आधार पर आप्त पुरुष माना गया है, उसी प्रकार उन्हें भगवान कहा गया है।

वेद में जो आप्त पुरुष के लक्षण दिए गए हैं, श्रीकृष्ण उन सभी लक्षणों पर खरे उतरते है। इसीलिए श्रीकृष्ण जी महाराज की प्रशंसा में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी लिखा था—श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-धर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है।

यह अंक श्रावणी पर्व एवं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर उन्हीं योगीराज, युगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित है।

इस अंक की आयोजना में सत्परामर्श देने वाले अपने सभी साथियों का मैं आभारी हूं। आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान महाशय धर्मपाल जी ने इस अंक के प्रकाशन में विशेष सहायता दी है। उनका हार्दिक धन्यवाद। अन्य सभी विद्वानों, लेखकों और विज्ञापनदाताओं तथा दानदाताओं का हार्दिक धन्यवाद।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 1-9-91)

'ओम्' आदि नाम सार्थक हैं जैसे रक्षा करने से (ओम्) आकाशवत् व्यापक होने से (खम्) और सबसे बड़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है।

परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धन-पति आदि नाम होते हैं।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

महर्षि दयानन्द सरस्वती जन्मदिवस समारोह

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस के अवसर पर समारोह आयोजित करने की समस्या पर्याप्त दिनों से उठती रही है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि काफी समय से स्वामी जी की जन्म तिथि का निर्धारण ही नहीं हो पाया। इसी कारण आर्य पर्व पद्धति में भी महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्मदिन को सम्मलित नहीं किया गया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की कई बैठकों में समय-समय पर विषय पर विचार किया गया। इस सम्बन्ध में 17 फरवरी 1991 को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की एक उपसमिति गठित की गई, इस उपसमिति में श्री वीरेन्द्र जी, श्री पं० रामचंद्रराव वन्देमातरम्, श्री ओमप्रकाश गोयल और डा० धर्मपाल (संयोजक) को सम्मिलित किया गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह निर्णय लिया है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस को आर्य पर्व पद्धति में सम्मिलित किया जाए तथा इस दिन सरकारी अवकाश घोषित कराने के लिए प्रयास किया जाए। यह उल्लेखनीय है कि 12 फरवरी की प्रति वर्ष हरियाणा प्रान्त में महर्षि दयानन्द जन्मदिवस के नाम से प्रतिबन्धित अवकाश घोषित किया हुआ है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की धर्मार्य सभा में इस विषय पर 29-5-55, 29-1-57, 20-6-58, 23-7-60 की बैठकों में विचार किया गया। इन बैठकों में निम्न तिथियों पर गम्भीर विचार विमर्श हुआ—

1—संवत् 1881 फाल्गुन बदी दशमी, 12 फरवरी 1825 (पण्डित भीमसेन शास्त्री)

2—फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा, 19 फरवरी 1823 (पं० इन्द्रदेव जतिपुरा)

3—भाद्र शुक्ला नवमी, 2 सितम्बर 1824 (पं० अखिलानन्द)

4—10 फरवरी 1825 (श्री जगदीश सिंह गलहोत)

5—15 सितम्बर 1824 (पं० भगवत दत्त)

इन सभी तिथियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया। और अन्त में श्री भीमसेन जी शास्त्री के मत को निम्न आधारों पर स्वीकार कर लिया गया।

—यह तिथि आत्मचरित से घटनाओं का मिलान करने और परीक्षण करने पर ठीक उतरती है।

2—महर्षि के शिष्य श्री पं० ज्वालादत्त ने महर्षि के नाम और जन्म के नक्षत्र के विषय में एक श्लोक लिखा है—जिसका उदाहरण पं० भीमसेन जी शास्त्री ने दिया है। 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' पत्र में महर्षि की दिनचर्या छपी थी। इस दिनचर्या के अन्त यह श्लोक छपा है।

क्षोणी माहीन्दुभिरयुते विक्रमे वत्सरे य:
प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणें देशवर्यें।
मूले नासौ जननविषये शकंरेण परेण,
ख्याति प्रापत् प्रथमवयसि प्रीतिदां सज्जनानाम्॥

अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती उत्तम देश दक्षिण में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में संवत् 1881 में प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने जन्म कालिक नक्षत्र के कारण बाल्यावस्था में मूलशंकर नाम पाया जो सत्पुरुषों को अतीव हर्षप्रद है।

धर्मार्य सभा की एक बैठक 29-4-56 को स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में हुई थी। श्री पं० भीमसेन शास्त्री ने इस सम्बन्ध में अपने विचार निम्न प्रकार प्रस्तुत किए थे—

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने संक्षिप्त आत्माचरित में अपनी जन्म भूमि काठियावाड़ तथा जन्म संवत् 1881 का वर्णन करने के अनन्तर विद्यारम्भ संवत् 1886 तथा उपनयन संवत् 1889 के समय अपने वय का निर्देश किया है। इसके बाद उन्होंने शिव पूजा के प्रारम्भ का प्रकार चौदहवें वर्ष के प्रारम्भ में स्वविद्या सम्बन्धी आदि के विषय में जो कुछ लिखा है। यह सब उनके बाल्यकाल की महत्तम घटना है। ऋषि ने यह शिवरात्रि जागरण अपने चौदहवें वर्ष के प्रारम्भ में किया था। आत्मचरित्र के लेखन के विश्लेषण से यह निश्चित ज्ञात होता है कि शिशु दयानन्द के जीवन में प्रथम वर्ष के प्रारम्भ में ही शिवरात्रि थी। दूसरे शब्दों में ऋषि का जन्म संवत् 1881 में शिवरात्रि के कुछ ही पूर्व हुआ था।

इसी प्रकार महर्षि के उपर्युक्त आत्मचरित के गृहत्याग प्रकरण की पर्यालोचना से यह स्पष्ट है कि वे इस बार डेढ़ मास से अधिक टंकारा नहीं रहे। वे संवत् 1902 में टंकारा आये थे और संवत् 1903 में उन्होंने घर छोड़ा था। इस डेढ़ मास का कुछ भाग 1903 में भी है, पर यदि इस सम्पूर्ण डेढ़ मास को 1902 ही रख लें तो भी वे संवत् 1902 की माघ पूर्णिमा के बाद ही अपने पाठशाला ग्राम से टंकारा आये थे। वहां यह भी वर्णित है कि वे घर आने से कुछ दिन पश्चात् 21 वर्ष के हुए थे। इससे ज्ञात हो जाता है कि मूलशंकर की जन्म तिथि संवत् 1881 माघ पूर्णिमा के पश्चात् थी।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं के वर्णन से यह निश्चित हो जाता है कि ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि संवत् 1881 में माघ पूर्णिमा के बाद और शिवरात्रि के पहले है। यह भी निश्चित है कि उनका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था। उपर्युक्त जन्म सीमाओं में मूल नक्षत्र फाल्गुन बदी दशमी तथा एकादशी में था। दशमी में वह अति स्वल्पकाल था तथा एकादशी में वह 5/7 घटिका था। व्यवहारिक सूर्योदय तिथि फाल्गुन बदी 10 शनिवार

थी। अतः महर्षि की जन्मतिथि फाल्गुन बदी दशमी है।

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की 23 जुलाई 1960 की बैठक में निम्न निर्णय लिया गया—

गत दो वर्षों से ऋषि जन्मतिथि तथा आर्यसमाज स्थापना दिवस के विषय में विचार चल रहा है। इन दोनों विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया और पं० श्री इन्द्रजी द्वारा लिखित "आर्यसमाज का इतिहास" ग्रन्थ के प्रकरण भी विचारे गए। इस सबके उपरान्त धर्मार्य सभा इस परिणाम पर पहुंची है—

ऋषि की जन्मतिथि संवत् 1881 फाल्गुन बदी दशमी, शनिवार 12 फरवरी 1825 है।

इस प्रस्ताव की पुष्टि सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा में सर्वसम्मति से 2 अप्रैल 1967 को की।

अब यह निश्चित हुआ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मदिवस अंग्रेजी तिथि से न मनाकर हिन्दी तिथि से प्रतिवर्ष फाल्गुन बदी दशमी को मनाया जाना चाहिए। इस अवसर पर आर्यसमाज मन्दिर में वैदिक शिक्षणालयों में तथा सार्वजनिक स्थानों पर सामूहिक रूप से निम्न कार्यक्रम किए जाने चाहिए।

1—प्रभातफेरियां

2—यज्ञ

3—सार्वजनिक सभाओं का आयोजन

4—वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार

(क) ट्रैक्ट बांटकर

(ख) व्याख्यानों द्वारा

(ग) दृश्य श्रव्य साधनों द्वारा

5—आर्यसमाज के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम जैसे—दलितोद्धार, शुद्धि, समानता, सहभोज आदि।

6—प्रभुभक्ति, ऋषि महिमा, देश प्रेम, जातिय गौरव और आत्म सुधार के विशेष भजन।

7—आर्यसमाज मन्दिरों और आर्य गृहों पर दीपमाला

8—वेदोपदेश

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 8-9-91)

हिन्दी दिवस

राष्ट्रीय जागृति मातृभाषा के प्रचार के बिना नहीं हो सकती। मातृभाषा के द्वारा कला कौशल और साहित्य को पुनर्जीवित करना देश के शुभचिन्तकों का प्रधान कर्त्तव्य है। यदि हमें संसार में जीवित रहना है, यदि हमें अपनी पूर्व कीर्तियों की लाज रखनी है तो परमावश्यक है कि सबसे प्रथम हम अपनी मातृभाषा की उन्नति में संलग्न हों, उसे अपना सर्वस्व ज्ञान और संसार में सर्व प्रिय वस्तु माने और उसके उद्धार के लिरे कटिबद्ध रहें। ये शव्द बहुत पहले राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने कहे थे। हमारे राष्ट्र के नियामक इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं। हम रस्मी तौर पर प्रति वर्ष हिन्दी दिवस का आयोजन कर लेते हैं और सोचते हैं कि हमारा कार्य खत्म हो गया।

हमारे देश की राजनीति भी हिन्दी के विकास को अवरुद्ध करने के लिए दोषी है। परन्तु विडम्बना यह है कि हमारी दृष्टि साहित्यकारों और मानव शास्त्रियों की ओर नहीं जाती, वह केवल राजनेताओं का मुंह क्यों तकती नजर आती है ? यदि हमने मानवीयता की भाषा को पढ़ा होता, तो देश में इस प्रकार के दिवसों का आयोजन करने की आवश्यकता न रहती। श्री एस० सत्यमूर्ति ने एक बार कहा था कि मुझे अपनी मातृभाषा तमिल पर बड़ा अभिमान है, पर मैं यह जानता हूँ कि दो करोड़ लोगों की भाषा हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, हिन्दी ही इसके लिए उपयुक्त है। हम इन वाक्यों की ओर ध्यान नहीं देते और क्षेत्रीय राजनैतिक पार्टियों के प्रचार का का शिकार हो जाते हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 खण्ड 1 में स्पष्ट लिखा है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। कितना अच्छा होता कि इस बात पर हम अडिग रह पाते। संविधान निर्माताओं की भी व्यवहारिक कठिनाई थी। वे भी भारत की समस्याओं को विदेशी आँखों से देखते थे। उन्हें स्वाधीनता की समझ तब आई जब उन्होंने विदेशों में जाकर स्वाधीनता का सही अर्थ समझा। देश में सारा काम अंग्रेजी में हो रहा था, इसलिये अगले ही अनुच्छेद में उन्होंने लिख दिया—26 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी उन सभी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होती रहेगी, जिनके लिये वह संविधान लागू होने से ठीक पहले की जाती थी। इसी अनुच्छेद में यह भी व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा उक्त 15 वर्ष की अवधि में राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिये अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा। संविधान निर्माताओं ने 15 वर्ष की अवधि की व्यवस्था इसलिये की थी कि इस अवधि में सभी

प्रशासक अपने को इस योग्य बना लें कि वे हिन्दी में काम कर सकें। इस सन्दर्भ में संविधान सभा के अध्यक्ष और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के शब्द उल्लेखनीय हैं—संविधान में उल्लिखित 15 वर्ष की अवधि वस्तुत: उनके लिये हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। हिन्दी भाषी राज्यों को तत्काल हिन्दी भाषा के माध्यम से सारा काम काज करना है।

परन्तु ऐसा हम कर नहीं पाये। इस छूट का नतीजा यह हुआ कि 15 वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के लिये 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया। सन् 1967 में राजभाषा अधिनियम 1963 का संशोधन पारित किया।

संविधान में राजभाषा आयोग गठित करने का भी प्रावधान किया गया था। सारा कामकाज हो रहा है। जैसा कि सरकारी कामों की नियति होती है, वही सब कुछ हो रहा है। लोग समझदार हो गये हैं। जो हिन्दी के पक्षधर थे, वे भी सोचने लगे कि देश की वास्तविक सत्ता उनके पास है, जो अंग्रेजी जानते हैं। इसलिये सभी के मन में अंग्रेजी का मोह जागृत हो रहा है। यदि अंग्रेजी समाप्त करनी है तो इसके लिये सुधार के कार्यक्रमों से कुछ न होगा, इसके लिये तो क्रान्ति के कार्यक्रम करने होंगे। इसके लिये बस एक ही वाक्य चाहिये "आज, से इसी समय से अंग्रेजी का प्रयोग बन्द"। बस यही एक मात्र समाधान है।

महात्मा गाँधी के शिष्य कहाँ उनकी बात मानते हैं? यदि हम भारत को राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है। (महात्मा गाँधी) महर्षि दयानन्द सरस्वती सभी कार्य आर्य भाषा के माध्यम से करना चाहते थे—'हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।'

आज तो विडम्बना यह है कि लम्बे समय के संघर्ष के बाद 'संघ लोक सेवा आयोग' के सामने हिन्दी के और भारतीय भाषाओं के समर्थन में धरना देने वालों की आवाज कोई नहीं सुनता। संसद में टांग और पसलियाँ तुड़वाने पर भी कोई यह नहीं सोचता कि ऐसा क्यों हुआ? इस सोच के प्रति लोगों को सचेत करने का उत्तरदायित्व तो हमें लेना ही चाहिये।

डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 15 सितम्बर, 1991)

हिन्दी और सरकारी कामकाज

हिन्दी भाषा को सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में प्रयुक्त करने की बात सर्वप्रथम 14 सितम्बर, 1949 को संविधान में डा० गोपाल स्वामी आयंगर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, और डा० भीमराव अम्बेदकर ने उठाई थी। उस समय हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने कहा था कि हिन्दी समर्थ नहीं है। उसमें पारिभाषिक शब्द नहीं हैं। उसे सामर्थ्यवान बनाना हिन्दी भाषा-भाषी लोगों का तथा हिन्दी के लेखकों-साहित्यकारों का दायित्व है। सरकार ने हिन्दी को समृद्ध करने के लिए अनेक आयोग बनाए। इन आयोगों ने हजारों नए शब्द गढ़े। कुछ शब्दों को विदेशी भाषाओं से ले लिया गया और कुछ का हिन्दीकरण कर दिया गया साहित्य में राज-काज में हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। पर कुछ राजनेताओं को यह बात रास न आई। वे हिन्दी न लादे जाने की दुहाई देने लगे और राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने के लिए बाध्य होना पड़ा कि अंग्रेजी का प्रयोग राज-काज में तब तक किया जाता रहे जब तक इसकी आवश्यकता है। यह उल्लेखनीय है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास के लिए निम्नलिखत निर्देश देता है—

'संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामूहिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के आठवीं सूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।' अब प्रश्न यह है कि हमारी सरकार क्या यह सब कर सकी है। और क्या 'हिन्दी दिवस' का प्रति वर्ष आयोजन मात्र एक परम्परा नहीं बन गया है। आज भी यह मान्यता है कि हिन्दी धर्म, अध्यात्म और उपदेश की भाषा हो सकती है, वह साहित्य की भाषा हो सकती है, पर वह व्यापार, वाणिज्य, विज्ञान, राजनीति, नृविज्ञान और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की भाषा नहीं हो सकती। हम यह देखने के लिए उत्सुक हैं कि यह व्यामोह कब दूर होगा।

पृथ्वीराज चौहान के राज्यारोहण का शिलालेख हिन्दी में है। शहाबुद्दीन ने सन् 1192 में कुतुबुद्दीन ऐबक को आदेश दिया था कि वह राज्य का शासन प्रबन्ध हिन्दी में करें। सन् 1327 में मोहम्मद तुगलक अपनी राजधानी दिल्ली से औरंगाबाद ले गया था। वहाँ की हिन्दी 'दक्खिनी हिन्दी' के नाम से प्रचलित है। इस भाषा का

मूल स्रोत कौरव प्रदेश है। डा० परमानन्द पांचाल ने कौरवी हिन्दी से इसका उद्भव माना है। बीकानेर के आर्य अभिलेखागार में सम्राट अकबर के आदेश उपलब्ध हैं। वे हिन्दी में लिखे हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्वप्न था कि पूरे देश में सम्पूर्ण कार्य आर्य भाषा हिन्दी में हो। हिन्दी का हित चाहने वालों में आर्य समाज भी अग्रणी है। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए हिन्दी अनिवार्य है। अब देखना यह है कि यह कब सम्भव होगा।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में आर्यसमाज सफदरजंग एन्क्लेव ने नवनिर्मित सभागार में पं० क्षितीश कुमार वेदालंकार की अध्यक्षता में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। लाला इन्द्र नारायण हाथी दांत वाले मुख्य अतिथि थे। पूर्व केन्द्रीय मन्त्री प्रो० शेरसिंह जी ने उद्घाटन किया और प्रकाशन विभाग के निर्देशक पद्मश्री डा० श्यामसिंह शशि, हंसराज कालेज में प्राध्यापक डा० प्रशान्त कुमार वेदालंकार, मोतीलाल नेहरू कालेज के प्राध्यापक डा० महेश विद्यालंकार, जाकिर हुसैन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज के प्राध्यापक डा० धर्मपाल, डा० जे० एल० आजाद, पूर्व सलाहकार योजना आयोग ने हिन्दी के विकास के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त किए। सभा मन्त्री श्री सूर्यदेव ने समारोह का संचालन किया।

—डॉ० धर्मपाल
(आर्य सन्देश, 13-10-91)

ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं, उनसे चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती जैसे अब माता-पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्त्ता के बिना कभी नहीं हो सकती।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

विजय दशमी

विजय दशमी का पर्व आनन्द एवं उल्लास का पर्व है। यह कहा जाता है कि इस दिन राम की रावण पर विजय हुई थी, राक्षसत्व पर देवत्व की विजय हुई थी, असत्य पर सत्य की विजय हुई थी, अधर्म पर धर्म की विजय हुई थी। 'दुरितनि परासुव, यद्भद्रं तन्नासुवः' जो बुराइयां हों, वे दूर हों और जो भद्र है, कल्याणकारी है, वह हमें मिले। सारा संसार आदि सृष्टि से इस लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस चरम सत्य को प्राप्त करने के लिए समय-समय पर इतिहास ने अवसर प्रदान किए हैं। राम-रावण युद्ध इसीलिए था कि दुष्टों का संहार हो और भलों को परिहार हो।

महाभारत का युद्ध भी इसी उद्देश्य से था—'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।' राम ने यही तो कहा था—'निशिचरहीन करो मही, भुज उठाय पण कीन्ह।' राम का प्रण था कि वे इस पृथ्वी को राक्षस विहीन कर देंगे। हमारी यह भी परम्परा है कि पर्वों के साथ-साथ हम व्रत भी करते हैं। यदि विजयदशमी के अवसर पर हम प्रण करें कि जो बुरा है उसे दूर करेंगे, जो अच्छा है, उसे अपनाएंगे, तो निश्चय ही गुरुवर महर्षि दयानन्द सरस्वती का कुरीति उन्मूलन का स्वप्न हम पूरा कर सकेंगे। पर आवश्यकता तो प्रण की है। होना तो यह चाहिए कि अमुक ने एक अच्छा कार्य किया है, हम उससे ज्यादा अच्छे कार्य करेंगे, पर होता इसके विपरीत है। लोग कहते हैं कि उसने यह किया, उसका कोई कुछ बिगाड़ न सका, हम भी यही कर लेंगे, तो हमारा कोन कुछ बिगाड़ लेगा। पर आओ इस पवित्र पर्व पर हम यह व्रत लें कि हम सत्कर्म की ओर बढ़ेंगे, हम अपने अन्दर रामत्व की भावना लाएंगे, हम उस मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनुसार आचरण करेंगे।

ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो धर्म को जानने वाला हो, किए को मानने वाला हो, सदा सत्य बोलने वाला हो और व्रत पर दृढ़ रहने वाला हो? इन शब्दों से धर्मज्ञ एवं गुणवान् की बात की विशद् व्याख्या हो जाती है। वाल्मीकि के राम के जिस रूप का पाठक के मन पर चित्र अंकित हो जाता है, वह धर्म को जानने वाला है। प्रत्येक संकट के समय वह यह विचार करता है कि धर्म अथवा कर्त्तव्य क्या है? आंखे बन्द करके वह परिस्थितियों के बहाव में नहीं बहता।

चरित्र की पूर्णता के कारण ही हम राम की आराधना करते हैं। वे विश्व-मर्यादा संस्थापक हैं।

—डॉ॰ धर्मपाल

आर्यसन्देश, 20-10-91

उत्तर प्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र में भूकम्प

यह समाचार चौंका देने वाला है कि उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र में एक भयंकर भूकम्प आया, उसमें सैंकड़ों हजारों व्यक्ति मर गए, अनेक घायल हो गये और वहां का अधिसंख्य भाग घर-बार रहित हो गया। पर्वतीय अंचल के लोगों के साधारण घर ढ़ह गये, बड़े शहर ध्वस्त हो गए। इस भूकम्प के भयंकर झटके दिल्ली में महसूस किए गये। यद्यपि इस तबाही का अधिक प्रभाव उत्तरकाशी, देहरादून, चमोली और गढ़वाल पर पड़ा है। यह एक सन्तोष की बात है कि हमारे राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, राज्यपाल आदि ने तुरन्त संवेदनाएं प्रकट करने के साथ-साथ राजकोष से राहत दिए जाने के तुरन्त प्रबन्ध कर दिए हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री ने तो स्वयं वहां जाकर परिस्थितियों का स्वयं विश्लेशण भी किया और तत्काल राहत के आदेश दिए। पिथौरागढ़, पौड़ी, नैनीताल और हरिद्वार भी इस भूकम्प की चपेट में आए हैं।

यह तो सुनिश्चित है कि सरकार इस दिशा में अपने कर्त्तव्य का पालन अवश्य करेगी। परन्तु सभी धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संगठनों का भी कर्त्तव्य है कि वे इस दिशा में यथा शक्ति कार्य करें। आर्य समाज का सदैव इस दिशा में योगदान रहा है। उन्होंने अनेक अवसरों पर राहत कैम्प भी चलाए हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि आपदाओं के समय आर्यसमाज ने सदैव बढ़-चढ़ कर कार्य किया है। मथुरा (1803), कुमायूं (1803), कच्छ, (1819), श्रीनगर (1828), आसाम (1869), श्रीनगर (1885), कांगड़ा (1905), आसाम (1918), दिल्ली (1920), आसाम (1930), बिहार-नेपाल (1934), मध्य प्रदेश (1938), अण्डमान (1941), आसाम (1970), महाराष्ट्र (1968), भद्राचलम (1969), कन्नौर और लाहौल स्पीति (1975), बिहार-नेपाल (1988) के भूकम्पों ने भारत में जैसी तबाही मचाई थी उससे भी ज्यादा भयंकर तबाही मचाने वाला यह भूकम्प माना जा रहा है। यहाँ पर अनेक तीर्थ यात्री सड़कों के मार्ग अवरूद्ध होने के कारण फंस गये हैं, भागीरथी का पाट, पत्थरों के अधिसंख्य हो जाने के कारण चौड़ा हो गया है और आस-पास के गांवों को लील रहा है।

आर्य समाज ने बिहार, बंगाल उड़ीसा के भूकम्प पीड़ितों को तथा तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश के बाढ़ पीड़ितों को राजस्थान हरियाणा के सूखा पीड़ितों को विशेष सहायता प्रदान की थीं। दिल्ली में तो आए दिन कोई न कोई समस्या विस्थापितों की भी खड़ी रहती है, पर यह सन्तोष का विषय है कि हम हर परीक्षा में खरे उतरे हैं।

दिल्ली वासियों ने मुक्त हस्त सहयोग दिया है। अब फिर उनके यज्ञ करने की बारी आई है। वैदिक संस्कृति याज्ञिक संस्कृति है। इसमें प्रत्येक वस्तु की सार्थकता इस बात से आंकी गई है कि उसके द्वारा संसार का कितना उपकार हो रहा है। जहां शक्ति, योग्यता और ऐश्वर्य केवल अपने स्वार्थ तक सीमित हों, वेद की दृष्टि में वह निन्दनीय है। ऐसी प्रवृत्ति पाशवी है, दैवी नहीं।

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में उपयोग की प्रायः समस्त वस्तुओं का परि-गणन करते हुए यज्ञेन कल्पताम् की प्रार्थना की गई है—आयुयज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां, श्रोत्रं यज्ञेन···आदि। यहां यह कामना की गई हैं कि प्रत्येक का क्रिया शक्ति में उसी यज्ञीय भावना का पुट अनिवार्य रूप से होना चाहिए।

महाभारत में एक नेवले की कथा आती है। सारे प्रसंग को पढ़ने पर सार यह निकलता है कि यज्ञ और दान का महत्व उसकी मात्रा पर नहीं है, अपितु भावना पर है। यदि एक निर्धन अपना पेट काट कर किसी सुपात्र की भूख मिटाता है, तो उसका महत्व एक अमीर के बिना असुविधा उठाये हुए, लाखों के दान से भी बढ़कर है।

पवित्र यज्ञ भी यही है कि हम दूसरों के सहायक बनें।

आओ हम प्रयास करें कि हम दूसरों को सहारा दे सकें। हमारा जीवन यज्ञ सफल हो।

—डॉ० धर्मपाल

आर्यसन्देश, 27-10-91

बिना चेतन परमेश्वर निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयं आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। जो स्वभाव से ही होते हों तो द्वितीय सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और नक्षत्रादि लोक आप से आप क्यों नहीं बन जाते ?

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

दिल्ली में आर्य समाज आंदोलन

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विश्व कल्याण हेतु आर्य समाज की स्थापना बम्बई में 1875 में की थी। इससे पहले महर्षि के हृदय में भारतीयों की दुर्दशा को देखकर कैसी टीस उठती थी तथा वे अंधविश्वासों में डूबी जनता को उबार कर किस प्रकार मानवता के प्रशस्त मार्ग पर प्रवृत करना चाहते थे, इनकी एक लम्बी कहानी है। घर में सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं होते हुए भी, उनका मन तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों एवं विषमताओं को देखकर विह्वल हो उठता था। शिवत्व की प्राप्ति के लिए 1855 में उन्होंने गृह त्याग किया और वे आबू पर्वत, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली, मेरठ, रुड़की होते हुए हरिद्वार के महाकुंभ में सम्मिलित हुए। यहां पर उनकी मुलाकात ऐसे क्रान्तदर्शी महान् उद्देश्यों के लिए समर्पित महानुभावों से हुई, जिससे उनकी हृदयाग्नि और अधिक प्रदीप्त हो उठी। वह स्वाधीनता संग्राम के मार्ग पर चल पड़ा। भारत के कोने-कोने में पहुंचकर उन्होंने सर्वत्र भारतवासितों को यह प्रेरणा दी कि वे आततायी अंग्रेज सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हों और ब्रिटिश शासन को इस भारत भूमि से उखाड़ फैंकें, यहाँ पर स्वराज्य की स्थापना करें। विदेशी राज्य भले ही सुराज्य हो, पर स्वराज्य कहीं अधिक श्रेयकर होता है।

दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी उस समय भी थी और आज भी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बम्बई के बाद लाहौर में तथा अन्य अनेक पंजाब और संयुक्त प्रान्त के शहरों-गाँवों में आर्यसमाज की स्थापना की। आज इस बात के साक्ष्य तो उपलब्ध नहीं है कि ऋषिवर दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना के लिए लालायित थे, अथवा नहीं, पर यह बात सुनिश्चित है कि उस अति व्यस्त महामानव ने नवम्बर 1878 में 'देहली आर्य समाज' की स्थापना के बाद क्रान्तिकारी श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखा, अजमेर और इलाहाबाद के अपने साथियों-भक्तों को पत्र लिखें। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना करके उन्हें सन्तोष हुआ होगा।

ऋषिवर के मन में देहली में आर्यसमाज की स्थापना करने की भावना उस समय और भी अधिक बलवती हो उठी होगी जब वे 17 दिसम्बर 1876 से 16 जनवरी 1877 में दिल्ली दरबार के समय, दिल्ली में आकर रहे थे। वे यहाँ पर लाला शेरमल के अनारबाग में ठहरे थे, जो अजमेरी गेट से दक्षिण में कुतुब रोड पर था। यहाँ पर

उनके अनेक भक्त भी अलीगढ़, कर्नवास, बम्बई, बरेली आदि शहरों से आए थे। कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह भी दिल्ली में स्वामी जी से मिलने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। इस अवसर पर समाज सुधारकों का सम्मेलन भी हुआ था। इस सम्मेलन में मुस्लिम एंग्लो ओरियंटल कालेज के संस्थापक सर सैयद अहमद खाँ, भारत वर्षीय ब्रह्म सभा के संस्थापक श्री केशव चन्द्र सेन, पंजाब ब्रह्मसमाज के आचार्य श्री नवीन चन्द्र राय, पंजाब के समाज सुधारक मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, मुरादाबाद के इस्लाम मर्मज्ञ विद्वान मुंशी इन्द्रमुणि भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। बम्बई के श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, पं० गोपाल रावहरि देशमुख जी को भी इस सम्मेलन में आमंत्रित किया गया। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आयोजित यह सम्मेलन सफल नहीं हो सका था। ऋषिवर ने प्रस्ताव रखा था कि 'हम लोग पृथक-पृथक रीति से धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें तो अधिक फल होगा।' इस विषय में बहुत बातचीत हुई, परन्तु मूल विश्वास में भेद समाप्त न हो सका। इसलिए जैसी वे चाहते थे, वैसी एकता नहीं हुई। बस यही क्षण रहें होंग, जब स्वामी जी का हृदय व्यथित हो उठा होगा और उन्होंने देश के केन्द्र दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना की बात सोच ली होगी।

अगली बार जब वे आए तो उन्होंने यहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना की और इसके बाद वे एक बार फिर 9 जनवरी 1879 से 15 जनवरी 1879 तक के लिए दिल्ली आए। इसके बाद वे यत्र तत्र सर्वत्र अपने आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए घूमते रहे। अन्तिम दिनों में उन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र राजस्थान को बनाया। वे चाहते थे कि यदि राजस्थान के वीर राजपूत उठ खड़े हों, तो भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने में आसानी होगी; साथ ही वैदिक धर्म की ध्वजा को दिग-दिगन्त तक फैलाने में उन्हें आसानी हो जाएगी, पर विधाता को यह स्वीकार्य न था और महर्षि दयानन्द सरस्वती, विश्व जनीन मानवता को आलोकित कर गए और दीपावली के दिन हम सभी को बिलखता छोड़कर शान्त भाव से अपने नश्वर को छोड़ गए।

ऋषिवर ने देहली आर्यसमाज का जो पौधा रोपा था, वह आज बढ़कर वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका है। यहाँ पर तीन सौ से भी अधिक आर्यसमाज हैं, इतनी ही स्त्री समाज हैं, इतने ही आर्यविद्यालय हैं, गुरुकुल और कन्या गुरुकुल हैं, डी. ए. वी. स्कूल हैं तथा कॉलेज हैं। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य केन्द्रीय सभा, आर्य प्रादेशिक सभा, आर्य शुद्धि सभा, स्वामी श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा तथा आर्य अनाथालय के तत्वावधान में आर्यसमाज के कार्य को विस्तार दिया जा रहा है। विश्व की आर्य समाजों की शिरोमणि सभा-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख्यालय भी यहीं पर है। सभी देशों की आर्यसमाजों को समय-समय पर दिशा-निर्देश यहीं से मिलता है।

इस विशेषांक में, हमारी इच्छा थी कि दिल्ली में आर्यसमाज के आन्दोलन का पूर्व विवरण दिया जाए। दिल्ली की सभी आर्यसमाजों और विद्यालयों का

विवरण यहां पर दिया जाए, इस आन्दोलन को गति प्रदान करने वाले आर्य जनों का परिचय यहाँ पर दिया जाए, परन्तु हमारी कुछ सीमाएं रही हैं। जिन-जिन आर्य-समाजों का विवरण प्राप्त हो सका, अथवा हम प्राप्त कर सकें, वह सब यहाँ पर दिया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि पाठकगण इन पृष्ठों में दिल्ली में आर्यसमाज के अतीत से परिचित हो सकेंगे, तथा भविष्य में इस कार्य को और अच्छा बनाने के लिए अपने सुझाव भी हमें देंगे। इस कठिन कार्य को करने में हमें श्री मूलचन्द गुप्त और श्री विमलकान्त शर्मा का विशेष सहयोग मिला है। इसके लिए ये दोनों महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं। आर्यसमाजों के उन सभी अधिकारियों का भी धन्यवाद करना, मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूं जिन्होंने यथा समय अपनी आर्य समाजों के विवरण हमें भेज दिए थे। दिल्ली के धनपतियों का भी विशेष सहयोग विज्ञापनों के माध्यम से हमें मिला है, उनका धन्यवाद करता हूँ। आर्यसमाज के शीर्षस्थ नेताओं के सन्देश और लेख भी हमें प्राप्त हुए हैं, मैं हृदय से उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए, सभी भाइयों बहनों के लिए दीपावली की मंगल कामनाएं।

—डॉ॰ धर्मपाल

(आर्य सन्देश 10-11-91)

जैसे मनुष्य में कर्त्ता के बिना कोई भी कार्य नहीं होता वैसे ही इस महत्कार्य का कर्त्ता के बिना होना सर्वथा असम्भव है। जब ऐसा है तो ईश्वर के होने में मूढ़ को भी सन्देह नहीं हो सकता।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

सुरा का दारुण प्रभाव

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना करते समय सदस्यता के लिए शर्तें निर्धारित करते समय स्पष्ट कर दिया था कि किसी प्रकार का व्यसन करने वाला व्यक्ति आर्य समाज का सदस्य नहीं बन सकता। शराब केवल मनुष्य के शरीर को ही नहीं खाती, बल्कि अन्य बुराइयों की भी जड़ है। यह आश्चर्य की बात है कि सभी धर्मावलम्बी शराब से परहेज की बात करते हैं, सरकार भी मद्य निषेध कार्यक्रमों, आन्दोलनों को चलाती है, फिर भी सुरापान निरन्तर वृद्धि की ओर है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था—

'यदि मुझे एक घण्टे के लिए भारत का डिक्टेटर बना दिया जाये, तो मेरा पहला काम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवजा दिए बन्द करा दिया जायेगा और कारखानों के मालिकों को अपने मजदूरों के लिए मनुष्योचित परिस्थितियों का निर्माण करने तथा उनके हित में ऐसे उपहार गृह और मनोरंजन गृह खोलने के लिए मजबूर किया जाएगा, जहां मजदूरों को ताजगी देने वाले निर्दोष पेय और उतने ही निर्दोष मनोरंजन प्राप्त हो सकें।'

—महात्मा गांधी, यंग इण्डिया 25-6-31

यह सब होते हुए भी दीपावली की प्रसन्नता की रात्रि में सुरा ने ताण्डव नृत्य किया और दो सौ व्यक्ति मर गये तथा सैंकड़ों अस्पतालों में हैं। उनमें से कुछ की आंखें चली गई हैं।

क्या कारण है कि इस विभीषिका पर काबू नहीं पाया जा सकता। दुर्घटना के बाद आयोग बिठाये जाते हैं, यहां पर भी बिठा दिया गया, पर ढाक के वही तीन पात। सरकार को एक्साइज चाहिए। सब पैसे की सोचते हैं। नैतिकता और चरित्र के मापदण्ड ढीले होते जा रहे हैं।

आओ सब मिलकर इस समस्या से छुटकारा पायें।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 17-11-91)

स्वर्गीय लाला लाजपत राय

लाला लाजपत राय का बलिदान दिवस 17 नवम्बर है। उनका जन्म 28 जनवरी 1865 को हुआ था। 17 नवम्बर, 1928 को उनका बलिदान हुआ। भारत में साईमन कमीशन आया था। लाहौर में यह कमीशन अक्तूबर 1928 के अन्तिम सप्ताह में आया था। स्थानीय जनता इसके बहिष्कार की पूर्ण तैयारी कर चुकी थी। स्टेशन पर ही काले झण्डे दिखाने की योजना बनाई गई थी। लाला लाजपत राय प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व कर रहे थे। कमीशन के स्टेशन पर उतरते ही 'साईमन गो बैक' के नारे लगने प्रारम्भ हो गए। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिए अनुचित बल का प्रयोग किया। लाला जी पर अनेक लाठियों के प्रहार हुए और यह भारत मां का सपूत इसी काण्ड के बाद, आजादी की बलि वेदी पर अमरत्व को प्राप्त हो गया। उस वीर को हम शत्-शत् प्रणाम करते हैं।

लाला जी आर्य समाज के पलने में बड़े हुए थे। उन पर भी वैसा ही आर्य समाज का प्रभाव था, जैसा अमर शहीद भगत सिंह, शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव, राजगुरु पर था। वे सब भी इसी प्रकार हंसते-हंसते फांसी के फंदों पर झूल गये थे। लाला जी ने आर्य समाज लाहौर के उत्सव पर एक बार कहा था—

मेरे जीवन का जो हिस्सा खराब है, वह मेरा अपना है। वह या तो मुझे विरासत में मिला है या मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों का फल है। लेकिन मेरे जीवन का जो हिस्सा अच्छा है और लोगों में प्रशंसा के योग्य है, वह सब आर्य समाज की बदौलत है। मैंने सार्वजनिक सेवा के तमाम सबक आर्य समाज से सीखे हैं। आर्य समाज के काम में ही, सार्वजनिक जीवन के पवित्र नमूने हैं।

इस प्रकार लाला जी आर्य समाज को विशेष महत्व दिया करते थे।

लाला लाजपत राय राजनैतिक नेता होते हुए भी, आर्य समाज का दिन-रात प्रचार-प्रसार के पक्षधर थे। उन्होंने 'आर्य समाज' नाम की एक पुस्तक अंग्रेजी में, 1914 में लिखी थी।

हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेकर आर्य समाज का कार्य विदेशों में, अन्य भाषाओं के माध्यम से बढ़ाना चाहिये।

उस वीर सपूत को विनत श्रद्धांजलि।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 24-11-91)

आर्य समाज और दृश्य-श्रव्य साधन

आर्य समाज एक सशक्त आन्दोलन है। आर्यसमाज ने केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में भी विशिष्ट कार्य किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा के फलस्वरूप सामाजिक समता दिलाने के लिए, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए, उनके अनुयायियों ने अनेक कार्यक्रम किए। आज भी आर्य समाज महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। श्री रामदत्त भारद्वाज की अरब की जेल से रिहाई एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। कुछ संगठन अपने कार्यक्रमों के साथ-साथ, जनता को अपने कार्यक्रमों से परिचित कराने का कार्य भी साथ लेकर चलते हैं। वे समाचार पत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन पोस्टर, साहित्य प्रकाशन, आदि के माध्यम से यह कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न कराते हैं। एक समय था, जब आर्य समाज के समारोहों में भीड़ हुआ करती थी। लाहौर में हमारे भजनोपदेशकों को सुनने के लिए राष्ट्रीय नेता भी समय निकाल कर आया करते थे, पर अब ऐसा नहीं है। लोग घर में बैठ कर लालकिला की प्राचीर पर स्वतन्त्रता दिवस पर ध्वजारोहण देखते हैं। वे गणतन्त्र दिवस की परेड भी घर बैठे देखना पसन्द करते हैं। हमें इन संसाधनों की अभिवृद्धि में भी सहयोग देना चाहिए।

आज दूरदर्शन पर हमें महात्मा गाँधी, नेहरू, लाला लाजपत राय, सरदार पटेल, आदि दिखाई दे जाते हैं। हमें चाहिए कि हम अपने आर्य समाज के नेताओं के के भी ऐसे ही बोलते हुए—आडियो, वीड़ियो कैसेट तैयार करायें। जो आज नहीं हैं, उन नेताओं के तो हम तैयार नहीं कर सकते। महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त, महात्मा हंसराज, महात्मा आनन्द स्वामी, महात्मा प्रभु आश्रित को तो हम कहाँ से लायेंगे, पर जो भी जीवित हैं, हमें उनके कैसेट तैयार कर लेने चाहियें। जो भी आज 70 वर्ष से अधिक की आयु के विद्वान, उपदेशक, नेता हमारे बीच में हैं, हमें उनके कैसेट शीघ्र तैयार करने चाहिएं, नहीं तो समय बीत जायेगा और हम हाथ मलते रह जायेंगे।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 1-12-91)

खण्ड 2

साहित्य निकष

वैदिक सोपान

श्रीमती शकुन्तला आर्या ने यह लघु पुस्तिका लिखकर आर्यसमाज तथा इसके कार्यों में रुचि लेने वालों के ऊपर महान् उपकार किया है। वेद का आदेश है—'मनुष्य बनो'। मनुष्य वही है जो उन्नत है, विचारवान् है, सबका कल्याण करने वाला है तथा जिसका अन्तिम लक्ष्य है—ब्रह्म का साक्षात्कार एवं प्राप्ति।

मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए विदुषी लेखिका ने दस सीढ़ियां बताई हैं और इन सीढ़ियों का आधार उन्होंने वेदों में प्राप्य ज्ञान को बताया है। पहले नौ सोपानों में, उन्होंने प्रत्येक में पांच गुणों को धारण करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इन सीढ़ियों में वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया जाए, यह बतलाया गया है।

इस पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल एवं शैली प्रवाह पूर्ण है। पढ़ते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि कोई आप्त पुरुष धीरे-धीरे मनुष्य हृदय में ज्ञान के दीप जला रहा है इस पुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन निश्चय ही मनुष्य को मनुष्य बनने में सहायता प्रदान करेगा।

[वैदिक सोपान—लेखिका श्रीमती शकुन्तला आर्या, प्रकाशक श्री कृष्णलाल सिक्का, 24 जंगपुरा विस्तार, नई दिल्ली-110014, मूल्य पक्की जिल्द 60 रुपये, साधारण जिल्द-50 रुपये, मुद्रक-रायसीना प्रेस, चमेलियन रोड, दिल्ली-6, पृष्ठ संख्या-160]

(आर्यसन्देश 23-7-89)

बड़ों को मान्यता दे, उनके सामने उठकर जाके उच्चासन पर बैठावे, प्रथम नमस्ते करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन

वेद मानवमात्र के प्रकाश स्तम्भ हैं। वेदों का ज्ञान विश्व संस्कृति की आधार-शिला है। वेदों के अध्ययन से अनन्त ज्ञान और विज्ञान का स्रोत ज्ञात होता है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में डा० द्विवेदी ने अथर्ववेद का सांगोपांग विवेचन व विश्लेषण किया है। प्रस्तुत पुस्तक में अथर्ववेद में वर्णित सभी विषयों की महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है। इसमें वेदों का महत्व अथर्ववेद का महत्व, भौगोलिक स्थिति, सामाजिक जीवन, आर्थिक स्थिति धर्म शिक्षा एवं विविध विद्याएँ, अभिचार कर्म, दर्शन : राजनीति और शासन प्रणाली, ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्म संस्कार, मनोविज्ञान आदि शीर्षकों के अन्तर्गत समस्त सामग्री दे दी गई है। इस पुस्तक के लेखन में डा० द्विवेदी ने काफी परिश्रम किया है तथा सर्वांगीण विवेचन के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

पुस्तक में कागज, छपाई उत्तम है। यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालय और आर्य परिवार के लिए संग्रहणीय है।

[लेखक—डा० कपिलदेव द्विवेदी कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार, प्रकाशक—विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी) साइज व पृष्ठ—डिमाई अठपेजी, 512+16 पृष्ठ, मूल्य—125 रुपये]

(आर्यसन्देश 30-7-89]

जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

सामवेद सुभाषितावली

वेद विश्व को ज्ञान देने वाले तथा प्रकाश देने वाले हैं। प्रस्तुत पुस्तक वेदामृतम् ग्रंथमाला का दसवाँ भाग है। इससे पूर्व वेदामृतम् के 9 भाग—सुखी जीवन, सुखी गृहस्थ, सुखी परिवार, सुखी समाज, आचार शिक्षा, नीति शिक्षा, वेदों में नारी, वैदिक मनोविज्ञान, यजुर्वेद सुभाषितावली ग्रंथ छप चुके हैं। डा० द्विवेदी की वेदामृतम् ग्रंथ-माला के 40 भाग विषयानुसार प्रकाशित करने की योजना है तथा उसका उद्देश्य जनसाधारण तक सरल भाषा में वेदों का ज्ञान पहुंचाना है। प्रस्तुत सामवेद सुभाषितावली ग्रंथ में सामवेद के सभी सुभाषित दिए गए हैं तथा उसके पश्चात् उनका हिन्दी में अर्थ दिया गया है। इसमें सामवेद के 1768 सुभाषित दिए गए हैं। इनमें धार्मिक, यज्ञादि, देवता, आचार शिक्षा, नीति शिक्षा, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, विश्व कल्याण, दार्शनिक, आयुर्वेद विज्ञान आदि में विषयानुसार अकारादि क्रम से सामवेद के सभी सुभाषित दिए गए हैं। सभी सुभाषित कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

पुस्तक का कागज, त्रुटिरहित छपाई को देखते हुए प्रकाशक ने इसका मूल्य कम ही रखा है। यह पुस्तक सभी पुस्तकालयों व परिवारों में संग्रह योग्य है।

[लेखक—डा० कपिलदेव द्विवेदी कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार, प्रकाशक—विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी), पृष्ठ संख्या 160, मूल्य —प्रचार संस्करण 16 रु०, सजिल्द 25 रु०]

(आर्यसन्देश 30-7-89)

जहां जिसका ग्रहण करना उचित है वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिए।

क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिए उससे न्यून वा अधिक न बोले।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

हिन्दू धर्मशास्त्रों में छुआछूत

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

(यजु० 18/48)

हम लोगों के ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं शूद्रों में पारस्परिक प्रीति हो।

डा० कृष्ण वल्लभ पालीवाल ने इस शोध अध्ययन के द्वारा आर्य जाति का महान् उपकार किया है। आज हिन्दू समाज में जो छुआछूत, जात-पांत का भेदभाव दिखाई देता है, उसका वेदों में कहीं भी उल्लेख नहीं है। अस्पृश्यता एक मानसिकता है जिसे कानून मात्र से समाप्त नहीं किया जा सकता और न ही राजनैतिक अधिकारों को प्रदान करने से इसे मिटाया जा सकता है। इसके लिए समूचे समाज को, मानव-वादी, समतावादी एवं एकात्मवादी तत्त्व दर्शन पर आधारित व्यावहारिक धरातल पर उतारना होगा। डा० पालीवाल ने रामायण, महाभारत, गीता, स्मृति एवं वेदादि शास्त्रों एवं सन्तों के वचनों के प्रमाण देकर इस ग्रंथ को बहुत ही उपयोगी बना दिया है। उन्होंने प्रामाणिक रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि वेदादि शास्त्रों में सब को समान तथा एक होने की प्रेरणा दी गयी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी दिशा में महान् कार्य किया। उन्होंने कहा था, मेरा उद्देश्य इस प्रकार लोगों को मिलाना है, सकल समुदायों को एकता में लाना है, मैं चाहता हूं कि कोल भील से लेकर ब्राह्मण पर्यन्त, सब में एक ही जातीय जीवन की जागृति हो, चारों वर्णों के लोग एक-दूसरे को अंग अंगी समझें।

अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए डा० पालीवाल ने विनायक दामोदर सावरकर, महात्मा बुद्ध, मेक्समूलर, डा० हेडगेवार, लाला लाजपतराय, डा० बालकृष्ण शास्त्री, स्वामी विवेकानन्द, काका कालेलकर, स्वामी करपात्री जी तथा महात्मा गांधी के भी विचार संकलित किए हैं।

हमें विश्वास है कि इस ग्रन्थ के शोध पूर्ण विचारों से पाठक लाभान्वित होंगे।

[हिन्दू धर्म शास्त्रों में छुआछूत ? डा० कृष्ण वल्लभ पालीवाल, 129-बी, डी डी-ए० फ्लैट, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली-27, मूल्य 10 रुपये, पृष्ठ संख्या 112]

(आर्यसन्देश 6-8-89)

रक्त साक्षी पं० लेखराम

पं० लेखराम आर्यसमाज के निर्माताओं में से एक अद्भुत व्यक्तित्व के धनी थे। प्रोफेसर राजेन्द्र जिज्ञासु ने यह अद्भुत ग्रन्थ लिखकर स्वयं को पं० लेखराम की ही पंक्ति में स्थापित कर लिया है। जितनी शोधपूर्ण सामग्री तथा उसका व्यवस्थित विवेचन इस ग्रन्थ में उपलब्ध है, उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। रक्त साक्षी शब्द अपने आप में अनुपम है। किसी बात के कहने का ऐसा अनूठा ढंग प्रोफेसर जिज्ञासु की अपनी विशेषता है। कुछ बातें तो उन्होंने कही ही नहीं पर वे पाठक तक पहुंच गईं, ऐसी संवृत्ति दक्षता इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर मिलेगी। इस ग्रंथ को पढ़ते समय वीर लेखराम का स्वरूप तो पाठकों के सम्मुख आता ही है, लेखक का ओजस्वी व्यक्तित्व भी आंखों के सम्मुख आ खड़ा होता है। उनकी कलम की यह शक्ति है कि पं० लेखराम के जीवन की अनेक घटनाएं हमारे सामने साकार हो उठी हैं। आर्यसमाज भारतीय जन जागरण, सांस्कृतिक व राजनैतिक उत्थान का पर्याय रहा है और इसमें योगदान है, पं० लेखराम सरीखे उद्भट विद्वानों तथा नेताओं का। पं० लेखराम का यह जीवन चरित्र धर्मप्रेमियों की रगों में उष्ण रक्त का संचार करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

इस महान् ग्रन्थ का प्रकाशन आर्य प्रकाशन दिल्ली के स्वत्वाधिकारी श्री तिलकराज आर्य ने किया है। आर्यसमाज के साहित्य का प्रकाशन, विक्रय एवं वितरण कोई सरल कार्य नहीं है। श्री तिलकराज के हृदय में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की पीड़ा है। उनका यह कार्य प्रशंसनीय है।

प्रोफेसर जिज्ञासु ने इस महान् ग्रन्थ को सात खण्डों में विभाजित किया है। हमें विश्वास है कि पाठक इस ग्रंथ से लाभ उठाएंगे।

(आर्यसन्देश, 20-8-89)

जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इसमें जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

गीतांजलि

प्रभुभक्ति के भजनों का अनुपम संग्रह गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ टैगोर की कृति गीतांजलि की याद दिलाता है। इसमें नाम साम्य मात्र ही नहीं है, अपितु भावप्रवणता भी वैसी ही है। इन गीतों की रचना, संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन का समुचित दायित्व यशस्वी वैदिक विद्वान् पं० यशपाल सुधांशु ने स्वयं वहन किया है। इस लघु पुस्तिका का इतने कम समय में, यह चौथा संस्करण इसकी लोकप्रियता का परिचायक है। लेखक ने अपनी प्रस्तावना में इस पुस्तिका के प्रणयन के सम्बन्ध में अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है कि 'चिन्तन की वेला में एकाग्र होकर सद्ग्रन्थों और महापुरुषों के वचनों का पठन और मनन अवश्य करना चाहिए।' उन्होंने प्रभु से प्रार्थना भी की है कि हम धर्म, देश और जाति की रक्षा करने में सर्वदा अग्रसर रहें और माया के बन्धन से छूटकर आपका साक्षात्कार करें।

[गीतांजलि—पं० यशपाल सुधांशु—आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-6, पृष्ठ 80, मूल्य छः रुपये]

(आर्यसन्देश 27-8-89)

प्रामाणिक वही होता है जो सर्वथा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे, झूठ न माने, झूठ न बोले और झूठ कदाचित न करे।

किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि 'अभिमानः श्रियं हन्ति' यह विदुरनीति का वचन है जो अभिमान अर्थात् अहंकार है वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना न चाहिए।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्य अनुपम भजनावली

आर्य अनुपम भजनावली में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के सुयोग्य भजनोपदेशक पं० चुन्नीलाल आर्य द्वारा संगृहीत भजनों का संकलन है। इसमें प्रभुभक्ति के 44 गीत सम्मिलित किए हैं। इन गीतों को विभिन्न अवसरों पर तथा संस्कारों के समय गाया जा सकता है। इस लघु पुस्तिका में उन्होंने सोहना गर्म जल कुंड के लिए वर्षों मुकद्दमा लड़कर, कुंड पर हिन्दुओं को अधिकार दिलवाने वाले महाशय गिरधारी लाल के प्रति भी अपने भावसुमन व्यक्त किए हैं। इसमें महात्मा उत्थान मुनि को भी ससम्मान स्मरण किया गया है।

[आर्य अनुपम भजनावली भाग 2, पं० चुन्नीलाल आर्य, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा—15 हनुमान रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या—36, मूल्य 2 रुपये]।

(आर्यसन्देश 27-8-89)

सज्जन पुरुष सज्जनों के साथ प्रेम और दुष्टों को शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं।

सबसे प्रीति पूर्वक परोपकारार्थ वर्तना शुभ चरित्र कहाता है।

सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन मन और धनादि उत्तम पदार्थों से सेवा करे।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

गौरवगीत

श्री ब्रह्मप्रकाश शास्त्री विद्यावाचस्पति ने "गौरवगीत" लिखकर आर्य जाति के ऊपर महान उपकार किया है। उनकी ये कविताएं धर्म, त्याग और बलिदान की भावनाओं से ओतप्रोत होने के कारण, छोटे-बड़े सभी के मनों को उत्तम भावों से भरने वाली हैं। श्री शास्त्री ने अपने अन्तरतम की गहराइयों को काव्यात्मक शैली में उभारने का सत्प्रयास किया है।

इस पुस्तिका का विमोचन गत वर्ष रामलीला मैदान में स्वामी आनन्द बोध सरस्वती ने किया था। इस पुस्तक की उपयोगिता इस बात में नहीं है कि इसमें कविताएं हैं, बल्कि इसकी उपयोगिता इस बात में है कि इसमें ऐतिहासिक वीरों की गाथाएं हैं, इसमें धर्मवीरों की गाथाएं हैं और इसमें हमारी धर्म पुस्तकों के सार हैं तथा साथ ही हमें कर्त्तव्य बोध कराया गया है।

इस पुस्तिका का प्रकाशन ज्ञान बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली-6 ने किया है।

(आर्य सन्देश 3-9-89)

सज्जन लोगों को राग-द्वेष, अन्याय मिथ्या भाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर, प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है।

सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

महर्षि दयानन्द सरस्वती की विशेषताएं

स्वनामधन्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने महर्षि दयानन्द की विशेषताएं नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखकर आर्यसमाज के ऊपर बहुत बड़ा उपकार किया था। यह पुस्तिका आज भी आर्य जनों के लिए एक प्रकाशस्तंभ है जिससे दूरागत लोग तथा भ्रमित लोग प्रकाश ग्रहण करते हैं। महर्षि की परिचायिका यह पुस्तिका भाषा और शैली की दृष्टि से भी अनुपम है। यह विद्वानों एवं सामान्य जनों का एक समान मार्गदर्शन करती है। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस पुस्तिका को महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर बीस सहस्र प्रकाशित कराकर निःशुल्क वितरित किया था। इस पुस्तिका के परिशिष्ट रूप में "आर्य समाज की मान्यताएं" लघु पुस्तिका भी संकलित की थी। दानी महानुभावों एवं अन्य संस्थाओं से मेरा साग्रह अनुरोध है कि वैदिक धर्म एवं आर्य समाज के प्रचार-प्रसार हेतु इस पुस्तिका की सैकड़ों-हजारों प्रतियाँ प्रकाशित करायें तथा जन-जन तक पहुंचाएं। मेरी इस पुनीत कार्य में हार्दिक शुभकामनाएं।

[महर्षि दयानन्द सरस्वती की विशेषताएं—दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड नई दिल्ली—निःशुल्क]

(आर्यसन्देश 3-9-89)

मनुष्य बन

ईमानदार कर्मनिष्ठ दिवंगत श्री जयप्रकाश सिंहल के परिचय स्वरूप इस लघु पुस्तिका का प्रकाशन उनके परिवार ने किया है। श्री सिंहल सेना में इंजीनियर थे और अपने अन्तिम दिनों में मिस्सामारी (आसाम) में कार्यरत थे। श्री जयप्रकाश जी वहां के ठेकेदारों के भ्रष्टाचार में सम्मिलित नहीं हुए और उन्हें मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा। कैराना (मुजफ्फर नगर) में जन्मे इस सपूत ने सच्चाई और ईमानदारी के लिए अपनी बलि दे दी। इसी वीर की पुण्य स्मृति में इस पुस्तिका का प्रकाशन हुआ है। 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक पुस्तक से वेद मन्त्र 'मनुर्भव' की व्याख्या उद्धृत करके मनुष्य मात्र को प्रेरणा दी गई है कि वे संसार का ताना-बना बुनते हुए प्रकाश का अनुसरण करें, बुद्धि से बनाए गए ज्योतिष्मान् मार्गों की रक्षा करें, निरन्तर ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करने वालों के उलझन रहित कर्मों को विस्तृत करें, बाधाओं और उलझनों से घबराएं नहीं, वे मनुष्य बनें और अपनी संतति को भी श्रेष्ठ बनायें।

स्व० श्री सिंहल की सन्तति आर्यसमाज के लिए पूर्ण समर्पित हैं। आपकी तीनों पुत्री और दोनों पुत्र रात-दिन आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं।

इसी पुस्तिका में एक और निबन्ध संकलित है—मित्र शत्रु बन जाते हैं। यह निबन्ध बहुत ही शिक्षा प्रद है। वास्तव में मित्र तो त्राण देने वाला होता है, व सहायता करने वाला होता है। वह मित्र की मर्यादा भंग नहीं होने देता। क्या कारण हैं कि ये शिवसखा अशिव बन जाते हैं। इसका एक ही कारण है विषमता। यदि हमारी इन्द्रियां आत्मा का साथ दें तो मित्र अन्यथा घोर दुःखदायिनी अमित्र। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हम हताश न हों, आत्मा के अनुसार आगे बढ़ें, किसी के लिए अशिव न हों तो दूसरे भी हमारे लिए 'शिव' ही होंगे।

इस लघु पुस्तिका में निबन्ध भी संगृहीत हैं। परिवार के लिए धैर्य की कामनाएँ।

(आर्य सन्देश 5-11-89)

स्वामी दयानन्द सरस्वती

साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, फीरोजशाह रोड नई दिल्ली ने भारतीय साहित्य के निर्माता शृंखला के अन्तर्गत "स्वामी दयानन्द सरस्वती" नामक लघु पुस्तिका प्रकाशित करके संन्यासी योद्धा, समाज-सुधारक, स्वराज्य क्रान्ति के प्रथम प्रणेता, आर्य-समाज के संस्थापक, युग प्रवर्तक, साहित्य सेवी स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

इस लघु पुस्तिका के प्रकाशन से संस्था स्वयं भी गौरवान्वित हुई है। श्री विष्णु-प्रभाकर की इस कृति में तीन खण्ड हैं—जीवन यात्रा, साधना एवं सर्जना, हिन्दी भाषा और साहित्य को योगदान तथा कुछ चयनित रचनाएँ।

इस पुस्तिका के अध्ययन से स्वामी जी के जीवन एवं कर्तृत्व का पाठक को समुचित बोध हो जाता है। कुछ पहलू ऐसे हो सकते हैं जिन पर सुधी पाठकगण अपनी प्रतिक्रियाएं भी भेजें, जिनमें उनकी असहमति हो तथापि कुल मिलाकर इस पुस्तिका के प्रणयन से अकादमी को अनुशंसाएं ही प्राप्त होंगी।

हिन्दी भाषा और साहित्य को, स्वामी जी के योगदान का सुन्दर विवेचन सुधी लेखक ने किया है। यह एक अच्छी बात रही है कि विष्णु जी आर्यसमाज तथा वैदिक विचारधारा से प्रारम्भ से ही जुड़े रहे हैं। इसलिए उनका लेखन अनुभूत है तथा पाठक पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। यह पुस्तक सभी आर्यजनों को पढ़नी चाहिए।

[स्वामी दयानन्द सरस्वती, साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या 118,
मूल्य 5.00 रुपये]

(आर्यसन्देश 3-12-89)

महर्षि का वैदिक उद्घोष

सदियों तक भारतीयों के मन व मस्तिष्क में यह विचार छाया हुआ रहा कि संसार से पलायन ही सच्चा धर्म व आध्यात्मिकता है। वैराग्य की भावना उत्पन्न होने पर ही सच्ची धार्मिकता को स्थान प्राप्त होता है। इस विचारधारा का निराकरण आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सोई हुई भारतीय जनता को वेदों का ज्ञान देकर किया। महर्षि ने वेद का अनादि ज्ञान गुंजाया। अपने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में संतोष व तप की जो मौलिक एवं सारगर्भित व्याख्या महर्षि ने दी, उसने एक नई वैचारिक क्रांति को जन्म दिया। इस ग्रन्थ ने मूल की भूल को सुधार दिया। इसी के फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, महात्मा नारायण स्वामी आदि ने देश में पुरुषार्थ व परामर्थ का एक अखण्ड यज्ञ रचाया। प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु ने इस लघु पुस्तिका में दार्शनिक सिद्धान्तों को अत्यन्त सरल शैली में समझाया है। इस पुस्तिका को पढ़कर पाठक के मन में पलायन की नहीं, अपितु कर्मठता की भावना जगेगी, वैराग्य और पुरुषार्थ का अद्‌भुत सम्मिश्रण होगा, 'तन्तुं तन्वन् भानुमन्विहि' का उद्घोष होगा। इस लघु पुस्तिका को दयानन्द माडल स्कूल विवेक बिहार के प्रबन्धक श्री विश्वम्भरनाथ भाटिया ने विशाल यज्ञ आयोजित करके निःशुल्क वितरिण किया।

['मूल की भूल'—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, आर्य प्रकाशन, 814 कुण्डे वालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-6, पृष्ठ संख्या 48, मूल्य 3.00]

(आर्य सन्देश, 3-12-89)

वैदिक पथ, यज्ञीय नौका और गीतमञ्जरी

स्वाभिमानी मीरां यति आर्यसमाज की सुप्रसिद्ध प्रचारिका हैं। उनके वेद-प्रवचन कार्यक्रम भातरवर्ष के कोने-कोने में होते रहते हैं। जिस की तड़प वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में हो तथा जो लम्बे समय से वाचस्पति हो अर्थात् वाणी की स्वामी हो, तथा अपनी मधुर वाणी से जनता की सेवा कर रही हो उसके हृदय में कलम-लेखनी द्वारा भी वेदप्रचार करने की इच्छाएं तरंगित होती हैं। आदरणीया माता जी ने अपनी इसी इच्छा को मूर्त्त रूप प्रदान किया है, वैदिक धर्म को व्याख्यायित करने वाली अनेक पुस्तकों का प्रणयन कर के। आर्य जनता ने उनकी 35 पुस्तकें पहले से ही पढ़ी हैं और अब उन की नवीनतम कृतियों में है—"वैदिक पथ"। इस पुस्तक में वैदिक समाज-व्यवस्था, वैदिक धर्म का शुद्ध स्वरूप, वैदिक धर्म में नारी का स्थान, वैदिक आश्रम-व्यवस्था सन्यास आश्रम, वैदिक वर्ण-व्यवस्था आदि का सरस, सुबोध शैली में सुष्ठु विवेचन किया है। उन्हीं की दूसरी कृति है, "यज्ञीय नौका"। इस पुस्तक में यज्ञ का वैदिक स्वरूप, यज्ञ की आवश्यकता और यज्ञ का लाभ सम-झाए गए हैं। अग्निहोत्र मन्त्रों के माध्यम से याज्ञिक की प्रार्थनाओं का भी सुन्दर विश्लेषण किया गया है। एक-एक मन्त्र की आधुनिक समाजोपयोगी व्याख्या की गई है। पितृ यज्ञ के बारे में जनसामान्य की भ्रान्तियों का भी निराकरण किया गया है। उन्हीं की तीसरी कृति है, 'गीतमंजरी'। इस पुस्तक में 84 गीतों का संकलन है। विदुषी माता मीरां जी यति ने अध्यवसाय पूर्वक इन गीतों का चयन किया है। इनके नियमित गायन से साधकों के मन का कलुष तो स्वयमेव साफ हो जाता है। आदरणीया माता जी ने अपने त्याग का एक समुज्ज्वल उदाहरण आरम्भिक निवेदन में, सभी पाठकों की जानकारी के लिए दिया है। माता जी के स्वास्थ्य और रोगोपचार के लिए श्रद्धेया संतोष रहेजा द्वारा भेजे धन का उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोग किया। ऐसी सन्यासिनी माता धन्य है जो अहोरात्रि वैदिक धर्म का नाद गुंजाने तथा दूसरों का कल्याण करने में संलग्न हैं।

इन तीनों पुस्तिकाओं को मां मीरा यति, वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर हरिद्वार से निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता है।

(आर्य सन्देश, 17-12-89)

भगवान दयानन्द का दिव्य संदेश

महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना एवं वैदिक ज्ञान का संवर्धन करके भारतीय आर्य जाति पर एक महान उपकार किया है। महर्षि ने आदेश दिया था कि भावी संतति को आर्य बनाइये—इसी मूल वाक्य को लेकर श्री सोहनलाल शारदा ने स्वर्गीय महारानी श्रीमती हर्षवन्त कुमारी जी शाहपुरा की पुण्य स्मृति में इस ट्रैक्ट का प्रणयन किया है। इसके पढ़ने से आर्यजनों को श्रेष्ठ पुरुषों के ज्ञान को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलेगी, अकर्मण्यता दूर होगी तथा पुरुषार्थ की भावना जगेगी। इस लघु पुस्तिका के साथ नित्य सन्ध्या-यज्ञोपासना-विधि की भी एक पुस्तिका संलग्न है जो पूर्णतः महर्षि कृत ग्रन्थों को ही आधार बनाकर तैयार की गई है। लेखक ने स्रोत स्थानों का निर्देष भी स्थान-स्थान पर कर दिया है। इस प्रशंसननीय कार्य के लिए सोहनलाल शारदा, स्वाध्याय मण्डल, शाहपुरा, जिला भीलवाड़ा राजस्थान के संचालक बधाई के पात्र हैं।

(भगवान् दयानन्द का दिव्य सन्देश, नित्य सन्ध्या-यज्ञोपासना-विधि, सोहनलाल शारदा स्वाध्याय मण्डल, शाहपुरा, जिला भीलवाड़ा (राजस्थान) निःशुल्क)

(आर्य सन्देश, 7-1-90)

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार की गुरुकुल पत्रिका-मासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रो० जयदेव वेदालंकार के सम्पादकत्व में नियमित हो रहा है। वर्ष 41 के अं अप्रैल-जून 1989 में उन्होंने ख्याति प्राप्त विद्वानों के शोध लेखों का सुन्दर संकलन किया। डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'ऋषि दयानन्द की जीवनी-एक विश्लेषण' लेख से ऋषि के जीवन काल विषयक भ्रान्तियों का निराकरण सहज ही हो जाता है। डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' लेख में वेदों का सार्वकालिकता का प्रतिपादन किया है। भारतीय संस्कृति के पोषक कवि नरेश मेहता के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का भी सुन्दर विश्लेषण सुधी आलोचक डॉ० विद्यासिंह ने प्रस्तुत किया। आर्यसमाज सान्ताक्रुज तथा आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई के अधिकारियों द्वारा साहित्यकार, कर्मठ पत्रकार एवं वेद मनीषी आदरणीय पं० सत्यकामजी विद्यालंकार विद्यामार्तण्ड की सेवा में समर्पित अभिनन्दन पत्र' का अविकल प्रकाशन श्रद्धेय पं० जी के कर्तृत्व का मूल्यांकन तो है ही, यह अन्य संस्थाओं के लिए प्रेरक भी है। विश्वविद्यालय द्वारा पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए अनुशंसा—

—डॉ० धर्मपाल

(आर्य सन्देश 7-1-1991)

वैदिक पथ

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महोपदेशक आचार्य हरिदेव सिद्धांत भूषण 'तर्क केसरी' ने वैदिक पथ का प्रणयन करके आर्य जनता को गूढ़ वैदिक विषयों से सरल भाषा में अवगत कराया है। उन्होंने ईश्वर, जीव प्रकृति तथा सामान्य आचार-विचार एवं व्यवहार की बातों को सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी शैली व्याख्यान परक है। वे वेद मन्त्र के आधार पर अपने विषय को प्रस्तुत करते हैं। वेद-मन्त्र की व्याख्या करके, उसे आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ते हैं। इससे उनका कथ्य रोचक हो जाता है। साथ ही वे स्वयं भी सीमाओं में बंधे रहते हैं। अपनी विचारणा का प्रतिपादन करने के उपरांत, वे पुनः वेदमन्त्र पर लौट आते हैं। पुस्तक की विषय सामग्री अच्छी है, पठन करने एवं मनन करने योग्य है।

[वैदिक पथ, आचार्य हरिदेव, वेद प्रचारक मंडल, 60/13, रामजस रोड, करौल बाग नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-112, मूल्य 5.00]

(आर्य सन्देश, 14-1-90)

सत् पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना।

जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावे तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

त्यागवाद

भारत की सबसे बड़ी विशेषता का परिचय देना हो तो उसे आध्यात्म और धर्म का देश कहा जा सकता है। आज के विश्व में विज्ञान ब्रह्माण्ड के विनाश का साधन बन सकता है। ऐसी स्थिति में भारत की संस्कृति, धर्म और आध्यात्म ही विश्व को जीवन का सन्देश दे सकते हैं।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने इस छोटी-सी पुस्तक में वेदोनिषद् में निहित इसी जीवन सन्देश को व्याख्यायित किया है। इसी पुस्तक को पढ़ने से सुधी पाठक को आध्यात्मिक जीवन के पांच मूल तत्त्वों—

(1) ईश्वर की सत्ता और उसकी व्यापकता में विश्वास,

(2) संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान,

(3) त्यागपूर्वक मांग,

(4) निष्काम कर्म और

(5) आत्मा के प्रतिकूल कार्य न करना —

की जानकारी मिलेगी। पुस्तक में गंभीर विषय का विवेचन सरल और सुबोध भाषा-शैली में किया गया है।

[त्यागवाद—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, अनीता प्रकाशन, हलवाई हट्टा, पानीपत, हरियाणा, पृष्ठ 112, मूल्य 15.00]

(आर्य सन्देश, 15-4-90)

गृहस्थ जीवन

संसार में दो तरह के जीवधारी हैं। एक हैं पशु, पक्षी, जलचर, नभचर और दूसरे हैं मनुष्य। इनमें पशु-पक्षी भोगयोनि के प्राणी हैं। मनुष्य भोगयोनि और कर्मयोनि दोनों का प्राणी हैं। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर फल भोगने में परतन्त्र है। मनुष्य भोग भोगता है, साथ ही अपने पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्तव्य के लिए प्रयत्नशील भी रहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक कविता में लिखा था—भगवान फूल से उसे दी गई सुगन्ध की, रंग की मांग करता है। कोकिल से वह कुहू-कुहू की अपेक्षा करता है। वृक्ष से वह फल की आशा करता है; पर आदमी से वह आशा करता है कि वह दुःख से सुख प्राप्त करे, अन्धकार से प्रकाश प्राप्त करें, असत्य से सत्य प्राप्त करे। भगवान् मानव के लिए कठोर क्यों हैं ? मानव के चारों ओर अन्धकार, असत्य और मृत्यु है और परमात्मा उससे अपेक्षा करता है कि वह प्रकाश, सत्य और अमरत्व को प्राप्त करे। इन्हें प्राप्त करने के लिए उसे कितना पुरुषार्थ करना पड़ेगा ? यही इस पुस्तक में बताया गया है। मनुष्यों में भी गृहस्थ की जिम्मेदारी अधिक है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी उसी पर आश्रित हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में इस विचारणा को सुष्ठु प्रतिपादित किया है। सुखी गृहस्थाश्रम के लिए माता-पिता का सामञ्जस्य, समन्वय, उनका स्वास्थ्य, उनके कर्त्तव्य इस पुस्तक में बताए गए हैं। परिवार को सुखी बनाने के लिए ये ग्यारह साधन हैं—उत्तम स्वास्थ्य, शान्त वातावरण, धैर्य, प्रसन्नता, चरित्र-निर्माण, कलात्मकता, कार्य में रुचि, समय-पालन, सहानुभूति, शक्ति सम्पदा, उच्चादर्श। घर की देखभाल में पले व्यक्ति ही सबसे सुखी इंसान हैं। इस पुस्तक का कलेवर बहुत ही सुन्दर है।

[गृहस्थ जीवन—पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार, आर्य प्रकाशन, 814, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-6, पृष्ठ-48, मूल्य 3.00]

(आर्यसन्देश 15.4-90)

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

(मू० ले० लाला लाजपतराय, अनुवाद : डा० भवानीलाल भारतीय)

प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष लाला लाजपतराय कृत पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के अंग्रेजी जीवनचरित के हिन्दी अनुवाद का परिचय कराते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। पं० गुरुदत्त आर्यसमाज के विगत वैदिक विद्वानों में शीर्षस्थ स्थान रखते हैं। केवल पच्चीस वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने आर्यसमाज और वैदिक धर्म की जो महती सेवा की, वैसा करना दीर्घायु प्राप्त लोगों के लिए भी सम्भव नहीं हुआ।

प्रस्तुत जीवनचरित का महत्त्व कुछ विशिष्ट कारणों से है। सर्वप्रथम तो इस पुस्तक की प्राचीनता की ओर दृष्टिपात करें। इसका प्रकाशन आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व 1891 में उस समय हुआ, जब पं० गुरुदत्त के निधन को एक वर्ष ही हुआ था, और पुस्तक के लेखक लाला लाजपतराय जी हिसार में वकालय करते थे। पं० गुरुदत्त का जन्म 26 अप्रैल, 1864 को तथा उनका परलोकगमन 19 मार्च, 1890 को हुआ था। इस प्रकार वे अपने जीवन के छब्बीस वर्ष भी पूरे नहीं कर सके थे। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में दूसरी उल्लेख योग्य बात यह है कि इसकी रचना देश के एक महान् नेता और स्वतन्त्रता सेनानी पंजाब केसरी लाला लाजपत राय की यशस्वी लेखनी से हुई है, जो स्वयं पं० गुरुदत्त के सहपाठी ही नहीं आयु में उनसे केवल एक वर्ष ही छोटे थे। पुनः यह भी ध्यातव्य है कि पं० गुरुदत्त और लाला लाजपत राय न केवल सहपाठी ही थे, किन्तु एक-दूसरे के अभिन्न मित्र भी थे। दोनों का आर्यसमाज में प्रवेश लगभग एक ही समय या एक ही दिन में हुआ था और इन दोनों महापुरुषों को इस महान् संस्थान में प्रविष्ट कराने वाले महापुरुष भी आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के सर्वमान्य नेता लाला सांईदास ही थे। महात्मा मुन्शीराम जैसी एक अन्य हस्ती को आर्यसमाज में लाने का श्रेय भी इसी महापुरुष को है।

जीवनचरित लेखक के लिए आवश्यक है कि अपने कथा नायक के बारे में उसकी जानकारी भरपूर, प्रमाणिक तथा अधिकृत हो। लाला लाजपत राय के लिए पं० गुरुदत्त के जीवन-विषयक तथ्यों का संग्रह तथा उन्हें व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना कोई कठिन कार्य नहीं था। वे स्वयं डी० ए० वी० कालेज लाहौर की स्थापना के आन्दोलन में पं० गुरुदत्त के निकट सहयोगी और साक्षी थे। यह अलग बात है कि आगे चलकर लाला लाजपतराय का सम्बन्ध आर्यसमाज के उस धड़े के साथ हो गया जो कल्चर्ड दल के नाम से जाना गया और जो पं० गुरुदत्त तथा उनके साथियों से कई बातों में भिन्न मत रखता था, तथापि लालाजी के लेखन की निष्पक्षता तथा सदाशयता का प्रमाण इस

ग्रन्थ की एक एक पंक्ति से मिलता है।

पुस्तक को पढ़ने से कुछ अन्य ऐतिहासिक तथ्य सामने आते हैं। यद्यपि लाला लाजपतराय आगे चलकर भारत की राजनीति में एक प्रकाशमान नक्षत्र की भाँति चमके, किन्तु अपने युवाकाल में जब वे आर्यसमाज आन्दोलन के अधिक निकट थे उस समय की शास्त्रीय अध्ययन में उनकी गहन अभिरुचि का पता भी इसी पुस्तक के अध्याय संख्या 10, 11 और 12 से लगता है। उन्होंने पं० गुरुदत्त रचित ग्रन्थों को न केवल गम्भीरता से पढ़ा ही था, अपितु वे उनके द्वारा किए गए ईश और माण्डूक्य उपनिषदों की व्याख्याओं की तुलना पश्चिमी लेखक आर्चिबाल्ड गफ, ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजामोहन राय तथा पं० भीमसेन शर्मा द्वारा लिखित टीकाओं से करते हैं तथा पं० गुरुदत्त कृत अर्थों की श्रेष्ठता, शुद्धता एवं प्रामाणिकता को भी सिद्ध करते हैं। यह एक ही तथ्य इस बात को प्रामाणित करने के लिए पर्याप्त है कि पुरानी पीढ़ी के आर्यसमाजी अपने धर्म ग्रन्थों और शास्त्रीय ग्रन्थों में छिपे तथ्यों को आत्मसात करने के लिए कितने उत्सुक रहते थे।

पुस्तक की एक अन्य विशिष्टता यह भी है कि यह लाला लाजपत राय की प्रथम प्रकाशित पुस्तक है। कालान्तर में उनकी अनेक पुस्तकें उर्दू एवं अंग्रेजी में छपीं, किन्तु पं० गुरुदत्त के इस जीवनी लेखन ने ही आगे के उनके जीवनचरित लेखन के मार्ग को प्रशस्त किया था जिसके अन्तर्गत गैरीबाल्डी और मैजिनी जैसे इटली के देश भक्तों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, शिवाजी तथा स्वामी दयानन्द जैसे भारतवर्षीय महापुरुषों के जीवन की रूप रेखाएँ भी उनकी मार्मिक लेखनी से प्रसूत होकर पाठकों के समक्ष आई।

आशा है आर्यजगत में इस ग्रन्थ का सर्वत्र स्वागत होगा।

(प्रकाशक—आर्य प्रकाशन, 814, कुण्डेवालान, दिल्ली, मूल्य-30 रुपये)

(आर्यसन्देश 6-5-90)

जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिए।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

सामवेद संहिता

श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा ने मनोयोगपूर्वक इस पुस्तक में सामवेद संहिता का कवितान्तर प्रस्तुत किया है। वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत है। इस भाषा से अनभिज्ञ सामान्य जन इन मन्त्रों की आत्मा तक पहुंच सके, उनके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी होगी। परम पिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में चार ऋषियों के माध्यम से चारों वेदों का ज्ञान दिया। ऋक्, यजु, साम और अथर्व के चार ऋषि हैं—अग्नि, आदित्य, वायु और अङ्गिरा। ऋग्वेद—ज्ञानकाण्ड, यजुर्वेद—कर्मकाण्ड और सामवेद—उपासना काण्ड कहलाता है। ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीन मनुष्य जीवन के लिए पुरुषार्थ से सिद्धि के उपादान मार्ग हैं। उपासना काण्ड होने के कारण सामवेद का विशेष महत्व है। साम का अर्थ है—**समता,** आत्मा और परमात्मा को समान स्तर पर लाना। ज्ञानपूर्ण मनुष्य **सत्कर्म** करता हुआ ही उपासना के द्वारा इस समत्व को पा सकता है।आधुनिक मनोविज्ञान में भी कोनेशन कोग्निशन और विलिंग इसी अभिप्राय को सम्पुष्ट करते हैं।

[सामवेद संहिता—श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा, 14 जैन मन्दिर राजा बाजार, नई दिल्ली-1, वैदिक प्रेस, कैलाश नगर, दिल्ली-31, मूल्य 100 रुपये]

(आर्यसन्देश 1 7-90)

बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति उद्यत रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं। क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के, पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि दे के निकालें।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आत्मकथा : महात्मा नारायण स्वामी

आर्यजगत के अग्रगण्य संन्यासी महात्मा नारायण स्वामी जी की आत्मकथा का यह तृतीय संस्करण है। यह पुस्तक कई वर्षों से अप्रकाशित थी। महात्मा नारायण स्वामी जी ही वह आदर्श आर्य नेता थे, जिन्होंने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली और आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश को बद्धमूल किया था। आर्यसमाज के हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता का श्रेय आपको ही है। कठिन परिस्थितियों के होने पर भी आपने आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया था।

आपकी आत्मकथा आर्यसमाज की गतिविधियों को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। महात्मा नारायण स्वामी का जीवन और चरित्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय हैं। पुस्तक की छपाई अत्युत्तम है।

डा० द्विवेदी ने आत्मकथा सुलभ कराकर आर्य जगत् को बहुत उपकृत किया है। कागज, छपाई एवं साज-सज्जा को देखते हुए पुस्तक का मूल्य कुछ कम ही है। प्रचार के लिए ऐसा करना उपयुक्त है। यह पुस्तक प्रत्येक परिवार के लिए संग्रह योग्य हैं।

[सम्पादक—डा० कपिलदेव द्विवेदी, कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, (हरिद्वार), पृष्ठ संख्या-256, मूल्य-8.50, प्रकाशक—विश्व भारती अनुसंधान परिषद् शान्ति निकेतन, ज्ञानपुर, (वाराणसी)]

आर्यसन्देश 8-7-90)

जो जिसके गुण नहीं जानता वह उसकी निन्दा निरन्तर करता रहता है। जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुन्जा का हार पहन लेता है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

जीवात्मा

दुर्भाग्यवश, शताब्दियों से वैदिक मन्त्रों के अर्थों से हम वंचित रहे और परिणामत: हमने अपने तत्वज्ञान के अनेक पक्षों के विषय में भ्रामक कल्पनाएँ बना लीं। हम महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋणी हैं कि उन्होंने वैदिक ज्ञान-भण्डार की लुप्त हुई कुंजी को मानव-मात्र के लिए ढूंढ़ निकाला। आर्यों का विशेष कर्त्तव्य है कि उस कुंजी के सहारे वेद मन्त्रों की अधिकाधिक गहराई में पहुँचते हुए, आध्यात्म-साधना में लीन हो जाये।

जीवात्मा मानव शरीर में किस स्थान पर है, अभी तक विवादास्पद बने हुए इस विषय को लक्ष्य मानकर गुरुकुल वृन्दावन के पूर्व आचार्य वीरेन्द्र परमार ने पर्याप्त समय वेद, वैदिक साहित्य तथा अन्य अपेक्षित ग्रन्थ व आयुर्वेद आदि के अध्ययन, अनुशीलन और मन्थन करने के अनन्तर श्री नवनीत प्राप्त किया है, उसने इस विषय को विवादहीन बना दिया है।

जीवात्मा पुस्तक कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है, इसका प्रमाण पुस्तक के प्रारम्भ में दिए गए महामहोपाध्याय श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, आचार्य उदयवीर जी शास्त्री तथा डा० फतेह सिंह जी के आशीर्वचन हैं। स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने भूमिका लिखी है।

"जीवात्मा" पुस्तक के विद्वान लेखक ने यह सिद्ध किया है कि प्राचीन ऋषियों और आप्त पुरुषों द्वारा प्रयुक्त हृदय शब्द मस्तिष्क के लिए प्रयुक्त किया गया है और वही जीवात्मा का आवास है।

श्री वीरेन्द्र सिंह परमार ने, इस पुस्तक को लिखकर धर्म, दर्शन और संस्कृति की जो सेवा की है, वह स्तुत्य है।

(जीवात्मा—लेखक श्री वीरेन्द्र सिंह परमार, प्रकाशक : श्रीमती महादेवी धर्मार्थ न्यास, 28 यू० वी०, जवाहरनगर, दिल्ली-110007, पृष्ठ संख्या 96, मूल्य 40 रुपये)।

(आर्यसन्देश 15-7-90)

वैदिक धर्म एवं संस्कृति

वैदिक धर्म की मान्यताओं एवं संस्कृति के सम्बन्ध में समय-समय पर मनीषी विद्वानों ने गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। वैदिक धर्म एवं संस्कृति नामक इस लघु पुस्तिका में लेखक ने उन सभी प्रश्नों का यथा साध्य उत्तर दिया है जिनको लेकर जन सामान्य भ्रमित है। आज का सामान्य व्यक्ति मात्र आडम्बर को धर्म समझ बैठा है। लेखक ने धर्म को सही रूप में परिभाषित किया है। भारतीय चिन्तन परम्परा का आदि स्रोत वेद है। जो वेद सम्मत है, वही सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। वेद विज्ञान की कसौटी पर खरा है। इस लघु पुस्तिका में आठ अध्याय हैं—धर्म क्या है ? भारतीय संस्कृति का स्वरूप, समाजोन्मुख परिवार सापेक्ष आर्य संस्कृति, वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था, व्यवित और समाज, विद्यार्थी जीवन, सती प्रथा, संतुलित जीवन।

मुझे विश्वास है कि लेखक की प्रतिभा एवं मौलिक चिन्तन से, आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजने में, सुधी पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुंचेगा और वे इस तनाव के जीवन में कुछ क्षणों के लिए शान्ति अनुभव कर सकेंगे।

श्री धर्मचन्द्र विद्यालंकार की शैली सुललित, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। इसमें शब्दों का आडम्बर बिल्कुल भी नहीं है।

[डा० धर्मचन्द्र विद्यालंकार, प्रवक्ता सनातन धर्म कालेज, पलवल, हरियाणा, अमर ज्योति प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 84, मूल्य 10 रुपये]

(आर्यसन्देश 9-9-90)

पक्षपातरहित वेद मार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्यसमाज नागोरी गेट हिसार की स्मारिका

आर्यसमाज नागोरी गेट हिसार का वार्षिकोत्सव 3,4 व 5 नवम्बर 1989 को आयोजित किया गया। सामान्यत: वार्षिकोत्सवों में दो या तीन सम्मेलन—वेद सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन आदि कर लिए जाते हैं, एक दिन महिला सम्मेलन कर लिया जाता है और एक दिन बच्चों की भाषण प्रतियोगिताएं कर ली जाती हैं। यह एक सामान्य सी प्रक्रिया है। इसके अपवाद भी हो सकते हैं। वार्षिकोत्सव के अवसर पर कई जगह स्मारिकाएं भी प्रकाशित होती हैं और इन स्मारिकाओं का उद्देश्य मात्र धन संग्रह होता है। अब प्रश्न यह है कि यदि सामान्य वार्षिकोत्सव हुआ हो और औपचारिक स्मारिका निकाली गयी हो, तो इसके विषय में लिखने की आवश्यकता क्या है?

इस आर्य समाज की स्मारिका के विषय में लिखने की आवश्यकता है। इस आर्य समाज को शेरे पंजाब लाला लाजपतराय ने स्थापित किया था और यह क्षेत्र कुछ समय के लिए उस रण-बांकुरे की कर्मस्थली भी रहा है। 17 नवम्बर 1989 को उसकी पुण्यतिथि मनाते समय हमने उसके कर्तव्य को स्मरण भी किया। वह वीर गर्मदल का व्यक्ति था। स्वीकार्य भाषा में कहें कि वह ओजस्वी और तेजस्वी वीर पुरुष था। आज भी आर्यसमाज को उसी ओज और तेज की आवश्यकता है। इसी बात की ओर, इस ने हमारा ध्यान आर्कषित किया है और इसी लिए इसके विषय में लिखना आवश्यक स्मारिका हो गया है।

इस स्मारिका में प्रारम्भिक औपचारिकताओं—सम्पादकीय, आभार, धन्यवाद, विषयसूची, चित्रावली, महान् लोगों के सन्देश, सम्बन्धित आर्यसमाज के इतिहास और कर्मठ कार्यकर्ताओं की सूची के बाद जो सामने आता है, वह है ऐतिहासिक दस्तावेज—इतिहास के परिप्रेक्ष्य में, हिसार में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय। यह लेख लाला जी को आत्मकथा का अनूदित अंश है। यह लेख उस समय के स्वाधीनता संग्राम में आर्य समाज की भूमिका का परिचय देता है और हमें बताता है कि किस प्रकार आर्यवीर, तप और त्याग की पृष्ठभूमि में पालित पोषित देश के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए तैयार थे और वे अपने आपको न्यौछावर कर रहे थे मातृभूमि पर। यह लेख सभी आर्यजनों का धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में अपने आपको उन्नतिशील बनाने के लिए सद्प्रेरणा देगा। इसी ओज और तेज की आज हमें आवश्यकता है।

इस स्मारिका में अन्य विद्वानों द्वारा लिखे लेख भी संग्रहणीय एवं पठनीय हैं। स्मारिका के निर्माण से सम्बद्ध सभी सुधी विद्वानों और कार्यकर्त्ताओं का हार्दिक अभिनन्दन।

(आर्य सन्देश 23-9-90)

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक शोधपत्रिका—गुरुकुल पत्रिका का वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान है। इसके जुलाई-सितम्बर 1989 अंक में आचार्य सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के विशेष लेख—उनके पास वेदार्थ की कुंजी थी, को सम्मिलित किया गया है। मनुष्य के वास्तविक तथा सम्पूर्ण रूप को समझाने के लिए उपनिषदों में कहा है कि वह पंचकोशात्मक है—अन्नमय, प्राणमय, मनोमथ, विज्ञानमय तथा आनन्दमय। अन्नमय से आनन्दमय तक इसका उत्तरोत्तर विकास होता है। पहले तीन से हम सभी परिचित हैं। इसके आगे जो मनुष्य का विकास होता है या हो सकता है—शुद्ध ज्ञान का अनुभव, उसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। आदमी इससे भी ऊपर आना चाहता है जहां उसके चारों ओर आनन्द ही आनन्द हो रहा हो; अर्थात् दुःख न हो। इसे ही देवत्व कहा गया है। इस देवत्व को कैसे प्राप्त किया जाए। इसके स्रोत वेद ज्ञान प्राप्ति में मिलेंगे। इस वेदार्थ को कैसे सही-सही प्राप्त किया जाए। यही इस लेख का वर्ण्य विषय है। इसी पत्रिका के अक्तूबर-नवम्बर 1989 अंक में अनेक ज्ञानवर्धक लेख हैं। आर्यबन्धु जयप्रकाश का आर्यसमाज; नान्यपंथा विद्यते ऽयनाय, हमारा मार्ग प्रशस्त करता है। एकता का मूल मन्त्र प्रदाता ऋषि दयानन्द आर्य जनता का मार्ग-दर्शक है। बौद्ध दर्शन और वेदान्त का तुलनात्क अध्ययन, जम्मू, विश्वविद्यालय के डॉ० राकेश कुमार मिश्र ने प्रस्तुत किया है।

[गुरुकुल पत्रिका—सं० डॉ० जयदेव वेदांतकार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, मूल्य 10 रुपये मात्र]

(आर्यसन्देश, 28-10-90)

श्री रत्न सागर

श्रीमज्जगद् गुरु 1008 श्री आचार्य गरीबदास जी महाराज की सटिप्पणी संक्षिप्त अमृतमयी वाणी का सम्पादन महामण्डलेश्वर डा० स्वामी श्यामसुन्दरदास शास्त्री, सांख्य योग वेदान्ताचार्य, साहित्य आयुर्वेदाचार्य, एम० ए०, प्राचार्य श्री गरीबदास जी साधु संस्कृत महाविद्यालय मायापुर, हरिद्वार ने किया है। इसकी भूमिका के लेखक हैं—साहित्यावाचस्पति डा० विष्णुदत्त राकेश, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार। यह वस्तुतत्व तो विश्वविदित ही है कि भारतीय धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्मवाद के एक मात्र मूलाधार वेद एवं दर्शनशास्त्र हैं। सन्त साहित्य एवं सन्त परम्पराएं इस तथ्य की पोषक रही है। इस सनातन सत्य के प्रचार प्रसार में धर्माचार्यों, सन्त महापुरुषों तथा प्रबुद्ध द्विज समाज का विशेष योगदान रहा है। इन्होंने अपने ज्ञानालोक और जीवन की श्रेष्ठता साधनाओं से मानव समाज को शान्ति सद्भाव एवं सौमनस्य के मार्ग पर चलने की प्रबल प्रेरणा दी है। "संगच्छध्वं, संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्" का आदर्श हमें सदैव संगठित करता रहा है और इससे हमारी सामाजिक एकता को बल मिला है। इस पुस्तक में ऐसे ही सन्त गरीबदास की वाणी को संकलित किया गया है।

[श्री रत्न सागर—सं० स्वामी श्यामसुन्दरदास शास्त्री, प्रकाशक—श्रीगरीबदास सन्तसाहित्य शोध संस्थान, मायापुर, हरिद्वार, पृष्ठ 472, मूल्य 25-00]

(आर्यसन्देश, 6-1-91)

जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान, सत्योपदेश से सबका उपकार करे उसको 'साधु' कहते हैं।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

स्वामिनी मीरां यति साहित्य माला

हम आर्यसन्देश के पिछले अंकों में आदरणीय स्वामी मीरा यति के द्वारा वेद-प्रचारार्थ किये गये कार्यों तथा उनके द्वारा प्रकाशित साहित्य का विवरण दे चुके हैं। पिछले दिनों श्रद्धेया माता जी से आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में भेंट हुई थी। उन्होंने बताया कि पहले उन्हें अपना साहित्य डाक से भेजने में कठिनाई होती थी परन्तु अब उन्होंने एक ब्रह्मचारी की व्यवस्था कर ली है। अब वे डाक से साहित्य भिजवा सकेंगी। वे अपनी पुस्तकें निःशुल्क वितरित करती हैं। सुधी पाठकों को चाहिये कि जो पुस्तकें मंगाएं, डाक व्यय पहले भेज दें अथवा स्वयं जाकर उनसे पुस्तकें प्राप्त कर लें। इस समय प्राप्त साहित्य निम्न प्रकार हैं :

1. पावमानी—इसमें गृहस्थियों के लिए पांच मन्त्रों की सुललित व्याख्या दी गई है।

2. दिव्य ज्योति महर्षि दयानन्द—इसमें महर्षि के गुणों का वर्णन है।

3. सुरत्ना नारी—यह पुस्तिका नारी के कर्त्तव्यों के विषय में है। इसमें सती-प्रथा की अप्रासंगिकता पर भी प्रकाश डाला गया है।

4. उद्यानं ते पुरुषाः—इसमें उन महापुरुषों के उन्नयन की कहानियां हैं जो हमारे प्रेरणा स्रोत हैं।

5. आदर्श कहानियाँ—इसमें शिक्षाप्रद कहानियां संकलित की गयी हैं।

6. स्वामी श्रद्धानन्द की अमर कहानी—इस काव्यात्मक पुस्तिका में स्वामी श्रदानन्द का प्रेरणादायक चरित्र वर्णित है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान : स्वामिनी मीरा यति, आर्यवानप्रस्थाश्रम
ज्वालापुर हरिद्वार

(आर्यसन्देश 6-1-91)

कश्मीर, झुलसता स्वर्ग

आर्यसमाज के सशक्त प्रवक्ता, आर्य जगत् के स्वनामधन्य सम्पादक पं० क्षितीश वेदालंकार की लेखनी से कश्मीर की समस्या का बेबाक विश्लेषण इस ग्रंथ में हुआ है। पं० जी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के विभिन्न पहलुओं पर समय-समय पर लिखते रहे है। पिछले दिनों पाठकों ने पंजाब पर लिखी उनकी पुस्तक 'पंजाब तूफन के में दौर' पढ़ी थी। वे इस पुस्तक में कश्मीर की ऐतिहासिक परम्पराओं का सुन्दर विवरण पढ़ेंगे। उन्होंने प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में संस्कृत के ग्रन्थों से या अन्य ग्रंथों से उस विषय से सम्बन्धित श्लोक अथवा वक्तव्य दिए हैं जो उस अध्याय की पूर्वपीठिका पाठक के मस्तिष्क में प्रस्तुत कर देते हैं। यह पुस्तक इतिहास है, पर इसकी शैली साहित्य की है। यही कारण है कि पाठक इसे हाथ में लेने के बाद पूरी पढ़कर उठ सकता है। उसे न भूख-प्यास लगती है और न ही नींद आती है। यदि यह कहूं कि हमारे नेताओं की ऐतिहासिक भूलों को पढ़कर उसकी नींद उड़ जाती है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। कश्मीर जो पूर्णत: हिन्दू संस्कृति का केन्द्र था, वहां पर इस्लाम का आगमन कैसे हुआ। आगे चलकर यह किस प्रकार आंतकवाद में बदल गया। आज हिन्दू किस प्रकार दर-दर भटक रहे हैं ? उनकी समस्याएं क्या हैं ? पं० जी की लेखनी से यह सब पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं नेहरू, पटेल, जिन्ना, शेख अब्दुल्ला, गांधी के चौकाने वाले चित्र इस ग्रन्थ में है। अन्त में उन्होंने कश्मीर समस्या को सुलझाने के लिए कुछ समाधान भी दिए हैं। ये पठनीय हैं तथा आचरणीय है। यह देश दया का पात्र है जो टुकड़ों-टुकड़ों में बंटा है और हर टुकड़ा अपने आपको राष्ट्र कहता है। यह दयनीय दशा, भारत की हो रही है। हमें संभलने की आवश्यकता है। पं० क्षितीशकुमार जी वेदालंकार इस सुन्दर पुस्तक के लिए बधाई के पात्र हैं।

(कश्मीर झुलसता स्वर्ग—पं० क्षितीशकुमार वेदालंकार, दि वर्ड पब्लिकेशन्स, 807/95 नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-19 पृष्ठ 144 मूल्य-30 रुपये)

(आर्यसन्देश 27-1-91)

युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, आचार्य, आर्यसमाज कलकत्ता ने यह अमूल्य ग्रन्थ आर्य भाई-बहनों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर भेंट किया है। इस ग्रन्थ में सत्यार्थ प्रकाश का परिचय तो दिया ही है, बल्कि सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार-प्रसार में जो कठिनाईयाँ आई है,उनका भी विवरण दिया हैं। सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर समय-समय पर प्रशासनिक और साम्प्रदायिक आक्रमण हुए, परन्तु यह अमरग्रन्थ, इन आक्रमणों का सामना करके और भी ज्यादा निखरे रूप में सामने आया। विरोधियों ने लेखनी उठाई, पर ऋषि भक्तों की प्रकाण्ड विद्वत्ता के सामने सभी ने अपने हथियार डाल दिए। प्रो० उमाकांत उपाध्याय ने सभी प्रसंगों को प्रारम्भिक रूप में सुरूचिपूर्ण शैली में इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। आपने युगनिर्माता सत्यार्थ प्रकाश लिखकर साहित्य सेवा का एक नूतन आयाम विस्तीर्ण किया है।

समय-समय पर सत्यार्थ प्रकाश के छोटे-छोटे सरल, सुगम, रूपान्तर प्रस्तुत किए, उनका भी विवरण इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर आर्य जगत में इतना कार्य हुआ है कि सभी का विवरण देना पं० जी के लिए संभव नहीं था। सत्यार्थ प्रकाश के अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। उन सभी का विवरण देना, पं० जी के लिए श्रमसाध्य कार्य था पर उन्होंने यह कार्य बहुत ही दक्षता पूर्वक किया है। प्रो० उमाकांत जी का साधुवाद।

(युगनिर्माता सत्यार्थ प्रकाश—प्रो० उमकान्त उपाध्याय, प्रकाशक—आर्य-समाज कलकत्ता, 19, विधान सरणी, कलकत्ता-7)

(आर्यसन्देश, 27-1-91)

पाषाणादि को छोड़ पलंग, गद्दी, तकिये, खड़ांऊ, ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्ति से न्यून नहीं।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर गोविन्द राम हासानन्द, दिल्ली-6 द्वारा वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति द्वारा लिखित 'वेदोद्यानके चुने हुए फूल' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति वेदों के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उन्होंने कुछ दिन पहले 'वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त' नामक ग्रंथ तीन खण्डों में लिखा था। यह एक अनुपम ग्रन्थ है। वेदों से चुने हुए पुष्प, प्रस्तुत ग्रन्थ में सजाकर प्रस्तुत किए गए हैं। इस ग्रन्थ में वेद, ईश्वर, सृष्टि-प्रलय, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राष्ट्रनिर्माण आदि से सम्बन्धित वेदमन्त्रों एवं सूक्तों का सुन्दर संकलन किया गया है। इन सूक्तों की विशद व्याख्या, आचार्य जी के मौलिक चितन का परिणाम है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से पाठकों को उदात्त वैदिक संस्कृति की अद्‌भुत झांकी मिलेगी।

गोविन्दराम हासानन्द के संचालक श्री विजयकुमार जी अद्‌भुत कर्त्तव्यनिष्ठा के धनी हैं। वे निरन्तर वैदिक साहित्य को आर्य जगत् तक पहुंचाने में संलग्न है। लेखक और प्रकाशक, दोनों ही हमारे धन्यवान के पात्र हैं।

(वेदोद्यान के चुने हुए फूल—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, गोविन्दराम हासानन्द 4405 नई सड़क दिल्ली-6, पृष्ठ-248, मूल्य-50 रु०)

(आर्यसन्देश, 17-2-91)

किसी जड़ पदार्थ के सामने सिर झुकाना वा उसकी पूजा करनी सब मूर्ति पूजा है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

वैदिक मधुवृष्टि

आचार्य रामनाथ वेदालंकार का "वैदिक मधुवृष्टि" गवेषणापूर्ण लेखों का संकलन है। आचार्य जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य तथा उपकुलपति रह चुके हैं। वे पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ के महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसंधान पीठ के अध्यक्ष भी रहे चुके हैं।

आचार्य जी ने इन अनुसंधान पूर्ण लेखों में विभिन्न विषयों को समाहित किया है। आदर्श गणतन्त्र, विश्वबन्धुत्व की भावना, शिक्षा शास्त्र के कतिपय सूत्र, वैदिक यज्ञ-चिकित्सा, वैदिक अर्थ व्यवस्था, वेदों में मानवता की प्रेरणा, वैदिक संस्कृति में जीवन का स्वरूप, मानव शरीर की महत्ता आदि विषयों का उन्होंने सुमधुर सुललित शैली में विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

वेद विविध बहुमूल्य विचार रूप रत्नों के आकर हैं। इन्हीं विचार रत्नों को पाठक इन लेखों में पायेंगे। आचार्य जी की लेखनी से आशा है कि भविष्य में भी हमें ऐसे अमूल्य लेख मिलते रहेंगे। आचार्य जी के स्वास्थ्य एवं निरोग जीवन के लिए शुभ कामनाएं।

[वैदिक मधु वृष्टि—डा० रामनाथ वेदालंकार, गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-6 पृष्ठ 256। मूल्य 60-00]

(आर्यसन्देश, 17-2-91)

यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृति मानते हो।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्यों का त्रैतवाद

आर्य समाज की विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक ग्रन्थों का प्रणयन एवं प्रकाशन किया जाता है। भारतवर्ष की तथा विदेश की अनेक प्रान्तीय सभाएं, सार्वदेशिक सभा तथा अनेक प्रकाशक इस दिशा में सराहनीय योगदान कर रहे हैं। कुछ व्यक्ति अकेले भी रात-दिन वेद माता की सेवा में लगे हैं। वे अकेले भी संस्था है। ऐसे ही महानुभाव हैं—डा० रामेश्वर दयाल गुप्त, सिद्धान्त शास्त्री एम० ए०, पी० एच० डी०। वास्तव में संस्थाओं में भी चाहे वे सरकारी हों या गैर-सरकारी एक या दो व्यक्ति ही कार्य करते हैं, बाकी तो केवल टी०ए०, डी०ए० सीधा करते है। उन्हीं कर्त्तव्य परायण व्यक्तियों का शोषण होता रहता है। यह ठीक है कि उन्हें भी उस कार्य को करते रहने में आनन्द आता रहता है, नहीं तो वे काम से अलग क्यों नहीं हो जाते। संस्थाएं उन्हीं के त्याग और तपस्या के बल पर चलती हैं। वे अकेले दीपक हैं जो सर्वत्र प्रकाश भले ही न फैला पाएं, पर अपनी शक्ति भर जलते तो हैं।

आर्यों का त्रैतवाद [अंक 11, मूल्य 5-00] में आपने वेद, ब्राह्मण, पुराण, रामायण महाभारत, गीता और सत्यार्थ प्रकाश पर आधृत शोध लेखों का संक्षेप सार दिया है। यह ग्रन्थ पठनीय है।

[आर्यों का त्रैतवाद—अंक 11, मूल्य 5.00, ज्वालापुर, हरिद्वार]

(आर्यसन्देश, 21-4-91)

वेदों में तो केवल मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्य का नाम मात्र भी नहीं। इसलिए मूर्तिपूजा का सर्वथा खंडन है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

आर्य महासम्मेलन, श्री गंगानगर राजस्थान की स्मारिका

आर्य समाज की स्थापना शताब्दी विशाल स्तर पर नई दिल्ली में 1975 में रामलीला मैदान में मनाई गई थी। उस समय भी भारतवर्ष में तथा विदेशों में आर्य समाज स्थापना शताब्दी अनेक स्थानों पर मनाई गई थी। आर्य समाज की स्थापना के बाद विभिन्न आर्य प्रतिनिधि सभाओं की शताब्दियां आयोजित की गयी। हरियाणा उत्तर प्रदेश राजस्थान की स्थापना शताब्दियां अपनी अपूर्व भव्यता के साथ आयोजित की जा चुकी हैं। कुछ स्थानीय आर्य समाजों ने भी अपनी स्थापना शताब्दियां आयोजित की हैं। बम्बई, दिल्ली, मेरठ, रुड़की, देहरादून, तथा अन्य अनेक स्थानों पर ऐसे आयोजन किये जा चुके हैं। इन आयोजनों से आर्य समाज आन्दोलन को कोई लाभ पहुंचता है, इस पर अनेक बार विचार किया जा चुका है। वास्तव में जब भी कोई आयोजन होगा, उसकी आवाज जन सामान्य तक तो अवश्य पहुंचेगी, समाचार पत्रों, रेडियो और दूरदर्शन पर भी उसका जिक्र अवश्य आएगा। इससे धीरे-धीरे जनमत भी अवश्य बनता है। इनका एक लाभ और है, हम अपने अतीत में झांक कर देखते हैं, उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं और आगे के लिए तैयार होते हैं? पिछले दिनों हैदराबाद के सत्याग्रहियों को हम ने स्मरण किया, गो भक्त शहीदों को स्मरण किया इससे निश्चय ही कुछ करने की भावना बलवती हुई है। हैदराबाद में भी एक विशाल समारोह हैदराबाद सत्याग्रह की अर्धशताब्दी के उपलक्ष्य में आयोजित किया जा चुका है। इन सभी कार्यों में सार्वदेशिक सभा की अपनी अहं भूमिका होती है। उसकी प्रेरणा पर, सम्पूर्ण भारत की आर्य समाजों तथा प्रान्तीय सभाओं की ओर से त्रिसूत्री कार्यक्रम-गोरक्षा, अंग्रेजी हटाओ तथा मद्य निषेध के सम्बन्ध में अनेक आयोजन हो चुके हैं। इन समारोहों से जनसामान्य को विचार करने का अवसर मिलता है।

इसी श्रृंखला में श्री गंगानगर राजस्थान में राजस्थान आर्य समाज शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में आर्य महासम्मेलन का आयोजन 8-9-10 अक्तूबर 1989 को किया गया था। यह स्वाभाविक ही है कि वहां पर अनेक सम्मेलन हुये, और भविष्य के लिए नये कार्यक्रम बनाये गये। वहां पर एक विशेष और उल्लेखनीय कार्य हुआ और वह है कि सुन्दर एवं भव्य स्मारिका का प्रकाशन। इस प्रकाशन की अपनी एक विशेषता है। इसमें आर्य समाज के दस नियमों की व्याख्या, अधिकारी विद्वानों से कराई गई है जो समयानुकूल है। मानवोत्थान के इन स्वर्णिम सूत्रों का ऐसा प्रासंगिक विवेचन, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं के लिए उत्साह एवं प्रेरणा प्रदान करेगा। इस अवसर पर अखिल भारतीय जन विचार संगोष्ठी भी आयोजित की गई। इस विचार गोष्ठी में गम्भीर विषयों पर विचार हुआ। हमें विश्वास है कि इसकी प्रकाशित रिपोर्ट भी शीघ्र ही मिलेगी।

इस स्मारिका को तैयार करने वाले सभी बन्धुओं का साधुवाद एवं अभिनन्दन।

(आर्य सन्देश 2-6-91)

स्वास्थ्य सोपान (छठापुष्प)

वैदिक धर्म की यह विशेषता है कि इसमें पारलौकिक एवं इहलौकिक क्रिया कलापों तथा उपलब्धियों को समान महत्त्व दिया गया है। धर्म की राह पर चलने वालों का स्वास्थ्य भी ठीक होना चाहिए—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। नीरोग कैसे रहें—यह पुस्तक में बताया गया है। आदरणीया श्रीमती दयावती बनाती ने रोग के कारणों, निदान तथा रोग से दूर रहने के उपाय बताए हैं। उन्होंने व्यायाम पर विशेष बल दिया है। मन और शरीर का परस्पर पूरक सम्बन्ध है। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। मन स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ होगा। शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी स्वस्थ होगा। व्यायाम मानसिक तनाव को समाप्त करने तथा आरोग्य वृद्धि में सहायक है। हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति ही जीवन के संघर्षमय पथ पर आगे वढ़ सकता हैं।

[स्वास्थ्य सोपान—श्रीमती दयावती बनाती 1/5 वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार मूल्य—केवल पढ़ना और स्वस्थ रह कर समाज की सेवा करना]।

(आर्य सन्देश 9-6-91)

स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ सिद्धि करने में दुष्ट कामों को भी श्रेष्ठ मान दोष को नहीं देखते।

मूर्खों का बल मौन है, जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय।

कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

वेद परिचायिका

इस पुस्तक में सुधी विद्वान लेखक डा० कृष्ण वल्लभ पालीवाल ने वेद का संक्षिप्त परिचय प्रश्नोत्तर रूप में दिया है। वेद, वेदाँगों, धर्म शास्त्रों, उपनिषदों, पुराण तथा स्मृतियों का संक्षिप्त परिचय देने के बाद वेदो में वर्णित विषयों का प्रतिपादन किया गया है। वेदों में वर्णित ज्ञान आज के विज्ञान व तकनीक के ग्रन्थों से कहीं अधिक उच्च श्रेणी का है। उन्होंने श्री अरविन्द को उद्धृत करते हुए लिखा है—'जो विज्ञान मनुष्य को पता नहीं, वह भी वेदों में है।' वह सब ज्ञान सूत्र रूप में है। इसकी लोक मंगल साधनकारी व्याख्या अपेक्षित हैं। 'वेद ईश्वरीय ज्ञान है, यह विषय अति गूढ़ है, पर विद्वान लेखक ने इस विषय का प्रतिपादन सरल एवं सुबोध शैली में किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान क्यों है? पुस्तिका के अन्त में स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताएं भी दी गयी हैं। यह छोटी सी पुस्तक प्रत्येक आर्य के लिए पठनीय है।

[वेद परिचायिका—डा० कृष्ण वल्लभ पालीवाल—गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-6 पृष्ठ-40, मूल्य 5-00]

(आर्यसन्देश 16-6-91)

चेत रक्खो बहुत सी पाखण्ड बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं।

जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होया है उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करने बालों का काम नहीं।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती अमृतसरी साहित्य माला

यह आर्य समाज का सौभाग्य है कि वैदिक विद्वान स्थान-स्थान से साहित्य प्रकाशन और उसके नि:शुल्क अथवा लागत मात्र मूल्य पर वितरण के द्वारा वैदिक धर्म तथा आर्य समाज की सेवा कर रहे हैं। पिछले दिनों आर्य समाज नजफगढ़ के वार्षिकोत्सव पर वीतराग संन्यासी श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती अमृतसरी से भेंट हुई। संन्यासी के नाम के साथ स्थान विशेष का नाम अटपटा सा लगता है। उनकी अनेक पुस्तकों, ट्रैक्टो, विज्ञापन पत्रकों का प्रकाशन श्री रोशन लाल मदान, एफ 8, ओइम विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली-59 द्वारा किया गया है। ऋषि वाणी भाग 1 और भाग 2 में उन्होंने सत्यार्थप्रकाश से ऐसे विशेष प्रसंग लिए हैं जो नवयुवकों का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। 'ऋषि वाणी' भाग 3 में उन्होंने संक्षेप में उन मन्तव्यों का प्रकाश किया है जिन्हें आर्य समाज मानता है। 'तुलसी के राम' पुस्तक में उन्होंने बताया है कि 'राम' एक महापुरुष हैं तथा वे स्वयं भी परमात्मा की आराधना करते हैं। वह परमात्मा कैसा है, यह सरल भाषा में समझाया गया है। 'श्रीकृष्ण और आर्य समाज' पुस्तिका में उन्होंने भागवत तथा महाभारत के कुछ प्रसंगों की वैदिक व्याख्या प्रस्तुत की है। 'वेद मन्त्र' पुस्तिका में कुछ चुने हुए वेद मन्त्रों की हिन्दी और अंग्रेजी में सरल व्याख्या दी गई है। 'मन मन्की' पुस्तिका में यजुर्वेद के छ: 'शिवसंकल्प' मन्त्रों की सरल व्याख्या दी गई है। उसके अतिरिक्त उन्होंने प्रचारार्थ अनेक छोटे छोटे कार्ड भी वितरणार्थ प्रकाशित कराये हैं।

(आर्य सन्देश, 30.6.91)

मद्यनिषेध गीतमाला

9 दिसम्बर 1989 को चौबीसी मेहम से प्रारम्भ हुआ मद्यनिषेध जुलूस नई दिल्ली में बोटक्लब पर 19 सितम्बर 1989 को पहुंचा था। उस समय वोट क्लब पर उपस्थित विशाल जनता को श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती, प्रो० शेरसिंह तथा श्री सूर्यदेव ने सम्बोधित किया था तथा राष्ट्रपति द्वारा ज्ञापन पत्र न लेने के कारण राष्ट्रपति भवन पर सत्याग्रह भी किया था। उस समय मद्य निषेध के लिए जो गीत गाए गए थे अथवा उससे जो पहले गाए गए थे, अथवा सामान्य जनता को जागृत करने के लिए अभी भी गाए जा रहे हैं अथवा गाए जाने चाहिए; उन सभी गीतों को ब्रह्मचारी नन्द किशोर ने इस छोटी सी पुस्तिका में सम्मिलित किया है।

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते।

(ऋ० 8।2।2)

(शराब को दिल खोलकर पीने वाले दुष्ट लोग आपस में लड़ते हैं और नंगे होकर व्यर्थ बड़ बड़ाते हैं।)

(मद्य निषेध गीतमाला प्रथम भाग ब्र० नन्द किशोर एम. ए., विद्यावाचस्पति, आचार्य, वेद मन्दिर ज्वालापुर (हरिद्वार)-मूल्य 5-00 रुपये)।

(आर्यसन्देश 30-6-91)

जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।

वैर-विरोध किसी से न करे। प्रसन्न होकर गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

शाश्वत वाणी

शाश्वत वाणी मासिक का साहित्यकार गुरुदत्त श्रद्धांजलि अंक पिछले दिनों प्रकाशित किया गया। वैद्य गुरुदत्त की लम्बी साहित्य यात्रा का विवेचन इस पत्रिका में किया गया। पत्रिका को देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उस महान लेखक के लिए समुचित श्रद्धांजलि इस अंक में प्राप्य होंगी। इसका कलेवर भव्य नहीं है। इसके पृष्ठों की संख्या भी मात्र 48 है, परन्तु फिर भी इस पत्रिका को लपक कर पढ़ने को मन करता है। इसका एक मात्र कारण यही है कि इस पर लिखा है—'गुरुदत्त' और छपा है, गुरुदत्त का प्रभावी चित्र। इसके सम्पादक अशोक कौशिक ने परिश्रम करके केवल वे ही लेख इसमें दिए हैं जो गुरुदत्त के जीवन के विभिन्न आयामों को उजागर करते हैं। अनावश्यक औपचारिकताओं को तो कहीं स्थान ही नहीं दिया गया। किसी भी महान व्यक्ति के निधन पर श्रद्धासुमन लिखना मात्र औपचारिकता ही है। वास्तविक आवश्यकता तो इस बात की होती है कि जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए अथवा जीवन मूल्यों को ऊंचा उठाने के लिए उस व्यक्ति ने क्या किया था। उस पहलू को ध्यान में रख कर ही अशोक कौशिक ने देश, धर्म ओर जाति के संरक्षक गुरुदत्त के जीवन के विभिन्न आयामों तथा उनकी विभिन्न क्षेत्रों में हुई उपलब्धियों का आकलन, इस स्मृति अंक में किया है। वास्तव में जीवन उसी का सार्थक है जिसके आश्रय में अनेक व्यक्ति अपना जीवन बिताते हैं, अन्यथा अपना पेट तो अपनी छोटी सी चोंच से कौआ भी भर ही लेता है। यह उक्ति हितोपदेश की है और यह अक्षरशः गुरुदत्त पर चरितार्थ होती है।

इस अंक में अनेक धुरन्धरों के शब्द चित्र संग्रहीत हैं। उनमें प्रमुख है—मधुकर दत्तात्रेय देवरस, वीरेन्द्र सिंह परमार, बलराज मधोक, डा० विद्यासागर, शिवकुमार गोयल, कृष्ण मित्र, नरेन्द्र अवस्थी, ऋषि मामचन्द्र कौशिक, डा० प्रकाश भारती, आशा बिपानी, डा० मोहनलाल श्रीवास्तव, अश्विनी कुमार वर्मा, श्रीमती कमला रत्नम्, पं० इन्द्रसेन शर्मा, सुकुमार महाजन, भानुप्रताप शुक्ल। यह लम्बी सूची देने में मेरा अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं है कि पाठक इन महान लोगों के नामों से अभिभूत हो जाएं। मेरा अभिप्राय मात्र यह बतलाना है कि ये लोग किस सीमा तक गुरुदत्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित रहे हैं।

अन्त में वैद्य गुरुदत्त के 198 उपन्यासों की सूची दी गई है। दर्शन विज्ञान, समाज व राजनीति पर उनके लिखे 34 ग्रन्थों की सूची भी दी गई है। इन सूचियों को

स्थान दिए जाने से इस स्मृति अंक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। वैद्य गुरुदत्त ने एक पुस्तक और लिखी थी—धर्मवीर हकीकत राय। सम्भवत: यह पुस्तक सम्पादक के ध्यान में नहीं आयी। 'धर्मवीर हकीकत राय की' भूमिका में वैद्य गुरुदत्त ने लिखा था कि मुझे धार्मिकता प्रदान करने में हकीकत राय की कहानी का विशेष योगदान है और मैं यह पुस्तक लिख कर अपने को हल्का अनुभव कर रहा हूं। ऐसा था उस महान व्यक्ति का विनीत भाव। इस पुस्तक को दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशित किया था।

यह लघु स्मृति ग्रन्थ हमें उस दीपक की याद दिलाता हैं जो दूसरों को प्रकाशित करता हुआ, स्वयं, तिल-तिल जलता रहा और अन्त में घोर अन्धकार में विलीन हो गया।

[शाश्वतवाणी—सं० अशोक कौशिक, कनाटप्लेस, नई दिल्ली]

(आर्यसन्देश 30-6-91)

जिसके नौ सौ निन्यानवे शत्रु और एक मित्र है उसको सुख कभी नहीं हो सकता।

जब तक मनुष्य में अति अज्ञान और कुसंग से भ्रष्ट बुद्धि होती है तब तक दूसरों के साथ अति ईर्ष्या द्वेषादि दुष्टता नहीं छोड़ता।

जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

न्याय दर्शन (गौतम मुनि प्रणीत)

भाष्यकार—तार्किक शिरोमणि : स्व० स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

संस्थापक—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार

महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपरान्त आर्य जाति को दर्शनों की सरलतम प्रश्न उत्तर के रूप में जो व्याख्या साधारण मति वाले मानव को लिखकर दी थी। वह अपने में अनुपमेय है।

पूज्य स्वामी जी के दर्शनों की सरल व्याख्या को पढ़कर साधारण से इन्सान में भी बुद्धि का प्रकाश हुआ है, उनके भाषानुवाद से एक आवश्यकता की पूर्ति हुई है।

समय समय पर यह दर्शन भाष्य रूप में जनता के समक्ष आते रहे हैं परन्तु तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी के तर्क तीरों के सामने बड़े-बड़े महारथी भी धराशायी हुए हैं।

वैदिक वाङ्मय के पश्चात षडदर्शनों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह सूत्रों में रचना कर साधारण मनुष्यों में ज्ञान वर्धन का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

हम गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के अधिकारी गणों का धन्यवाद करते हैं जिन्होंने अपने कुलपिता के साहित्य को जनता तक पहुंचाने का संकल्प लिया है।

आशा है पाठकवृन्द इस दर्शन का आनन्द प्राप्त कर प्रकाशक के उत्साह का वर्धन करेंगे।

(आर्यसन्देश 14-7-91)

दुष्टों को यथावत् दण्ड देने और श्रेष्ठों के पालन करने में दया और इससे विपरीत करने में दया क्षमा रूप धर्म का नाश है।

—'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

